

**मननीय
लेखों का
संकलन**

मननीय लेखों का संकलन

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ क्रमांक
१	सत्य के चश्मे के आरपार - आइये, पिछले ५०० वर्षका इतिहास फिर से पढ़ें।	१
२	नए संविधान की रचना क्यों हुई ?	९
३	न्याय - कानून - राज्यसत्ता	१२
४	न्याय की पुकार	१५
५	आज के स्वराज्य का सच्चा स्वरूप	२०
६	भारतीय प्रजा की स्वतंत्रता या परतंत्रता ? भ्रम तोड़ो, सत्य पहचानो !	२३
७	भारत को 'स्वराज' मिला ? बनाम वेटिकन की सत्ता का व्याप	२५
८	धार्मिक वैश्विकरण के पहले चरण की शुरुआत जगत के धर्माचार्य यूनो की शरण में	२७
९	विश्व धर्म परिषद	२८
१०	यूनाइटेड नेशन्स के तत्वावधान में अगस्त २००० में आयोजित धार्मिक व आध्यात्मिक नेताओं की सहस्राब्दि विश्व शांति शिखर परिषद द्वारा जारी उद्घोषणा के अनुच्छेदों का 'पोस्ट मॉर्टम'	३३
११	वर्तमान राज्य व्यवस्था गलत है।	३८
१२	विरोध वेटिकन का, न की ईसाई धर्म का	३९
१३	अपव्यय का अनर्थ कहाँ ?	४३
१४	फर्टिलाइज़र सबसीडी : धीमा मीठा जहर	४९
१५	जिल्ला कलेक्टर के पद पर विदेशी नागरिक की नियुक्ति हो सकेगी	५२

सत्य के चश्मे के आरपार - आइये, पिछले ५०० वर्ष का इतिहास फिर से पढ़ें ।

- राजेन्द्र जोशी

१९९७ का वर्ष बीत चला है। व्यक्ति पर, परिवार पर, समाज पर, राष्ट्र पर, विश्व पर, कितने ही घाव छोड़ता हुआ, समय की रेत का एक और कण फिसल रहा है। भविष्य आशा की लालिमा नहीं, भय की कालिमा की ओर संकेत करता है। हर व्यक्ति संदिग्ध मनोदशा में एक ही प्रश्न से जूझ रहा है - क्यों ऐसा हो रहा है ? इस प्रश्न की ऊंगली पकड़ कर जवाब के लिए इतिहास के पन्नों को एक एक कर पीछे की तरफ उलटते जायें तो यह सफर रुकता है वर्ष १४९२ पर ! ठीक आज से ५०० वर्ष पूर्व का समय, जब आम तौर से सुख और अमन की जन-जीवन की सरिताने अपना प्रवाह मोड़ा - या उसे मोड़ा गया, और सरिता के गुड़ते प्रवाह के साथ जो विनाश का दौर आता है, वह शुरु हुआ।

पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त तक युरोप के बाहर का सारा विश्व युरोप के दो राष्ट्रों का - स्पेन और पोर्तुगल का - गुलाम था। सारे विश्व में आवागमन का एक ही मार्ग था - समुद्र; और युरोप के कई साहसिक नाविक नये नये देश, नयी भूमियाँ खोज रहे थे (आज जैसे तथाकथित रूप से मंगल व गुरु के ग्रहों तक पहुंचने की कोशिश हो रही है !) इन नये खोजे जानेवाले देशों के बारे में, इनके स्वामित्व के मुद्दे पर स्पेन व पोर्तुगल के बीच विवाद होता था।

भारतीय संस्कृति में ही नहीं, विश्व की अन्य संस्कृतियों में भी उन दिनों धर्म-सत्ता सर्वोपरी होती थी और सामान्य रूप से न सुलझने वाले विवाद - धर्म-सत्ता के पास ले जाये जाते थे। स्पेन व पोर्तुगल का विवाद भी उन देशों की (ईसाई) धर्मसत्ता के पास पहुँचा। उस समय छठे पोप सर्वोच्च धर्म सत्ता के रूप में आसीन थे। इस विवाद का स्थायी हल निकालते हुए उन्होंने सन् १४९२ में एक आदेश या फरमान (जिसे अंग्रेजी में Bull कहा जाता है) जारी किया कि पृथ्वी के पूर्व में जितने नये प्रदेश खोजे जायें उनका स्वामित्व पोर्तुगल का हो तथा पृथ्वी के पश्चिम में जितने नये प्रदेश खोजे जायें उनका स्वामित्व स्पेन का हो।

चूँकि यह आदेश निकला सन् १४९२ में - यह वर्ष सारे विश्व के इतिहास को मोड़ देनेवाला वर्ष है। इसी आदेश के साथ एक फैसला यह भी हुआ कि सारे विश्व में एक ही प्रजा हो - श्वेत प्रजा, व सारे विश्व में एक ही धर्म हो - ईसाई धर्म। और इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए विश्व की सारी अश्वेत प्रजा का विनाश हो - और ईसाई के अलावा अन्य सभी धर्मों का विनाश हो। सारे विश्व पर अपना स्वामित्व मानकर और उस स्वामित्व को प्रत्यक्ष करने के लिए उठाये गये कदमों पर अब नयी दृष्टि डालने से इस निर्णय के सत्य होने का प्रमाण मिलेगा।

स्वामित्व के सिद्धांत का सर्व प्रथम प्रतिपादन हुआ विश्व के नये देशों को स्पेन व पोर्तुगल के बीच बाँट कर। अन्यथा क्या अधिकार था ईसाई धर्म की चर्च संस्था के प्रधान को कि वह ईश्वर की बनायी इस धरती व उसकी जीवसृष्टि को इस तरह बाँट सके ?

विश्व के दो प्रदेश - विशाल धरती के प्रदेश, अमरिका व भारत, इस दुर्भाग्यपूर्ण फैसले के बाद खोजे गये। सन् १४९८ में पोर्तुगल के नाविक वास्को-डी-गामाने भारत की खोज की व उसके पहले सन् १४९२ में ही क्रिस्टोफर कोलंबस ने अमरिका की खोज की। अमरिका के मूल निवासी 'रेड इंडियन' जिनकी आबादी उस समय करीब ११ करोड़ थी, स्पेन की सेना

की कत्लेआम के शिकार हुए और बीते ५०० वर्षों में उनकी जनसंख्या घट कर अब सिर्फ करीब ६५,००० रह गयी है। आज अमरिका की सारी प्रजा 'माईग्रैटेड' लोगों की प्रजा है, जो युरोप के अलग अलग राष्ट्रों से जा कर वहाँ बस गये हैं। २०० वर्ष पूर्व 'स्पेन' के उपनिवेश के रूप में अमरिका 'आज़ाद' जरूर हुआ, किंतु कहाँ है उसके मूल निवासी - वहाँ के रेड इंडियन्स ?

भारत की प्रजा की अपनी युगों पुरानी संस्कृति थी। सुदृढ़ जड़ोंवाला सामाजिक, आर्थिक - राजनैतिक ढाँचा था, जिस पर धर्म का नियंत्रण व संरक्षण था। अतः इस प्रजा के साथ एसा सलूक संभव नहीं था जैसा अमरिका की मूल प्रजा के साथ हुआ। अतः इस प्रजा के तथा उसके धर्म के विनाश के लिए अलग नीति की आवश्यकता थी और अलग योजना की।

'साम - दाम - दंड - भेद' की नीति की भारत के परिप्रेक्ष्य में समीक्षा हुई। 'साम', समझाने पर इस देश की प्रजा कभी नहीं मानती, क्योंकि सर्वोत्कृष्ट सनातन, वैदिक व अन्य धर्मों के आश्रय में सर्वोत्कृष्ट जीवन का स्वाद यहाँ की प्रजा युगों से जानती थी। 'दाम' का तो कोई अर्थ ही न था - यह देश सोने की चिड़िया था व समय समय पर यहाँ की समृद्धि की लालच में लुटेरे यहाँ आते थे और उनकी मोटी लूट के बावजूद यहाँ की आर्थिक समृद्धि पर कोई असर नहीं होता था। 'दंड' भी यहाँ बेकार था। अतुल शौर्य के धनी क्षत्रियों के अलावा यहाँ की प्रजा मानसिक गौरव व शारीरिक बल-सौष्ठव की ऐसी धनी थी, देशाभिमान की भावना से इतनी भरी थी कि प्रजा - वत्सल - राजाओं की छत्रछाया में सारा देश सुरक्षित था। १४९२ के पहले कितने ही मुगल, मंगोल और अन्य आक्रमणकारी यहाँ आये तो भी किसी के वश में यह देश नहीं आया।

अब बचा सिर्फ 'भेद' ! और इस शस्त्र को आजमाने का कार्य सोंपा गया भेद नीति में निपुण ब्रिटेन को। इस तरह चाहे भारत की खोज की पोर्तुगल ने और पहली कोठी बनाई गयी गोवा में, किंतु भारत में मुख्य खेल खेलने के लिये चुना गया ब्रिटेन को।

इतने विशाल, सुसंस्कृत देश का विनाश 'रेड इंडियन्स' के विनाश की तरह सरल न था। इस कार्य को योजनबद्ध तरीके से करने के लिए विशाल योजना बनाई गयी और योजना के प्रत्येक चरण के लिए करीब १००-१०० वर्षों का कार्यकाल तय किया गया। बारीक से बारीक बात तय की गयी।

किसी भी आक्रमण में प्रथम चरण होता है दुश्मन की छावनी में अपने जासूस भेजना, दुश्मन के सारे प्रदेश की जानकारी लेना, उसकी शक्तियों तथा दुर्बलता के छिद्रों को जानना तथा हमले के लिए सर्वथा उपयुक्त समय तय करना। तदनुसार पूरी सोलहवीं शताब्दी में ब्रिटेन के कई 'जासूस' यात्रिकों के भेष में भारत आये। वर्षों तक - दशकों तक, भारत में रहे - घूमे, भारत के कोने कोने में गये तथा भारत के अस्तित्व के हर पहलू के बारे में जानकारी लेकर उसका व्यवस्थित 'डोक्युमेंटेशन' किया। यहाँ की वर्ण व्यवस्था, व्यक्तिगत स्तर पर चारों आश्रम की व्यवस्था, परिवार व समाज व्यवस्था, राजकीय व अर्थ व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, धर्म व्यवस्था, भौगोलिक स्थिति, ऋतुएँ, खेती की प्रणाली, व्यवसाय व उद्योग, प्राकृतिक संपदायें, रीति-रिवाज, मानव व अन्य जीव-सृष्टि का आपसी संबंध, पशुसृष्टि ईत्यादि, ईत्यादि - सभी कुछ उनकी पैनी नजर के नीचे आया और उन प्रवासियों की डायरी में नोट होता चला गया। उन सभी मुद्दों पर प्रशंसा के अलावा कुछ नहीं था और आज जो हमें इतिहास पढ़ाया जाता है उसमें इन डायरियों में की गई प्रशंसा को पढ़कर हम खुश होते हैं। वास्तव में 'Espionage' का इतना बड़ा दौर इतिहास में और कोई नहीं है।

आक्रमण के प्रथम चरण - जासूसी के बाद, दूसरा चरण होता है शत्रु के दायरे में घुस कर हल्ला। किंतु भेद-नीति में चतुर अंग्रेज यह जानते थे कि आक्रमणकारी के रूप में यदि इस देश में घुसे तो बुरी मार पिटेंगी ! अन्य (मुगल) आक्रमणकारी और सिकंदर इस तरह पिट चुके थे। इसलिये उन्होंने भेष बनाया व्यापारी का ! ब्रिटेन की पार्लियामेंट ने 'ईस्ट इंडिया कंपनी' को 'चार्टर' दिया, अनुज्ञापत्र दिया कि जाओ भारत में व्यापार करो।

एक मिनट, ब्रिटन की पार्लियामेंट को यह अधिकार कहाँ से मिला कि एक ऐसे देश में, जो उसके अधिकार क्षेत्र में किसी तरह नहीं है, व्यापार करने का परवाना दे सके ? यदि आपको शहर में कोई दुकान खोलनी हो तो संबद्ध वॉर्ड का अधिकारी ही आपको परवाना दे सकता है, उसी शहर के किसी अन्य वॉर्ड के अधिकारी का परवाना नहीं चल सकता । तो फिर यह तो सात समन्दर पार के देश की बात है ।

किंतु यह पुष्टि है उस स्वामित्व के अधिकार की, जिसे स्वयंभू रूप से पोप महोदय ने अपने आप में निहित कर लिया है ! जैसे हमारी संस्कृति का मंत्र है 'सब भूमि गोपाल की', वैसे पश्चिम की संस्कृति का मंत्र है - 'सब भूमि.....' स्वयंभू स्वामित्व का एक और उदाहरण - २ दिसंबर १९६४ को तत्कालीन पोप जब पहली बार भारत आये तब बिना किसी पासपोर्ट के आये थे । अपने ही स्वामित्व के देश में जाने के लिए पासपोर्ट की भला क्या आवश्यकता ?! खैर!

'चार्टर' लेकर आयी 'ईस्ट इंडिया कंपनी' सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में भारत आयी, बंगाल के नवाब के दरबार में चार्टर पेश किया, ब्रिटन को मुट्ठीभर लोगों का गरीब देश बताया, भारत की समृद्धि और नवाब साहब के गुणगान किये, काँच के बने सामान का तोहफा दिया और - व्यापार के लिए कोठी बनाने की ईजाजत मांगी । उदार व भोले नवाब, कपटी गोरों की भेद-नीति से अनजान, अंग्रेजों के प्रभाव में आ गये और उसके बाद का इतिहास तो सर्वविदित है ।

कुछ ही वर्षों में कोठियों के आसपास किले बन गये और स्वरक्षा के बहाने सेना की छोटी छोटी टुकड़ियाँ भी आ गई । बंगाल (कलकत्ता) के अलावा बम्बई व मद्रास में भी कोठियाँ बनी ।

द्वितीय चरण में दुश्मन की छावनी में घुस जाने का काम पूरा हुआ । अब बारी थी दुश्मन के दारु-गोले के विनाश की । भारत की शक्ति थी उसकी हर क्षेत्र में सुद्रढ़ व्यवस्थाओं की - यही उसका दारु-गोला था । सबसे पहला लक्ष्य बना वर्ण व्यवस्था का विध्वंस । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र - इन चारों से, श्रम के विभाजन के सिद्धांत पर बनी पारस्परिक मेल-मिलाव वाली व्यवस्था के खंभों को एक एक करके तोड़ा गया ।

नयी शिक्षा नीति द्वारा गुरुकुल व्यवस्था को तोड़ कर ब्राह्मणों को दीन-हीन बनाया गया । धार्मिकता को अन्धविश्वास का रंग देकर प्रजा को शनैः शनैः धर्म के बारे में उदासीन बनाकर भी ब्राह्मणों की स्थिति बिगाड़ी गई और अंततः उन्हें सरकारी नौकरियों पर निभने को मजबूर किया गया ।

छोटे - छोटे राज्यों, राजाओं को आपस में लड़वा कर हारे हुए राजा का राज्य खालसा करके उसकी सेना का विसर्जन करवाया । जीते हुए राजा को भी संधि करके, अपना मित्र बनाकर, अपनी तोप व बन्दूक से सज्ज सेना की सहायता का आश्वासन देकर उसकी सेना की संख्या भी कम करवायी और इस तरह से क्षत्रियों को बेरोजगार व अंततः सरकारी नौकरियों का आश्रित बनाया ।

वैश्य वर्ग को स्थानिक धंधों को सहारा न देने की शर्त पर ब्रिटन में बने माल की एजेन्सी ऊँचे कमिशन पर देकर, "व्यापार याने व्यक्तिगत मुनाफ़ा, सामाजिक उत्तरदायित्व नहीं" - एसी पट्टी पढ़ाकर इस देश के विशाल कारीगर और गृह उद्योग में लगे लोगों से दूर किया और यह विशाल वर्ग भी बेरोजगार हुआ ।

शूद्रों को अन्य तीनों वर्गों के प्रति भड़काया और धन, शिक्षा, वैदकीय उपचार - सहायता वगैरह का लालच देकर उनका धर्मांतर किया और वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत समाज के अन्य वर्गों से उनका विच्छेद करवाया ।

आर्थिक क्षेत्र में कृषि और व्यवसाय दोनों क्षेत्रों में केन्द्र में भारत का पशुधन था। इस पशुधन को करोड़ों की संख्या में कत्ल किया और उसके स्थान पर मशीन आधारित उद्योगों को लाया गया। भारत की प्राकृतिक संपत्ति व कृषि क्षेत्र के उत्पादन को क्रोड़ियों के मोल ब्रिटेन भेजा गया और उस कच्चे माल से बनी चीजें बीसीयों गुना दामों पर वापस भारत मंगाई जाने लगी। अर्थ व्यवस्था की आधार स्वरूप खादी को नष्ट किया गया और विध्वंस की इस परंपरा ने अपने खप्पर में कई बली लिये।

सारी व्यवस्थाओं के विनाश का यह कार्यक्रम चला सन् - १८५७ तक और योजना के इस चरण के अंत का समय आया। १८५७ की लड़ाई में कारतूसों पर गाय व सूवर की चरबी लगाने की अफवाह जानबूझकर फैलाई गई, ताकि विद्रोह हो। योजना के अनुसार विद्रोह हुआ और उसके दमन में क्षत्रियों का जो श्रेष्ठ यौद्धा वर्ग बचा था उसका सर्वनाश हो गया।

अब तीसरा चरण शुरु हुआ - 'कंपनी सरकार' की बिदाई का और 'रानी सरकार' के आगमन का ! कंपनी सरकार के दमन व अत्याचार की दुहाई देकर उसका चार्टर रद्द किया गया और उसकी जगह महारानी विक्टोरियाने सन् १८५८ के 'क्वीन्स प्रोक्लेमेशन' द्वारा अपना राज्य घोषित कर दिया। कैसे ? वही स्वयंभू स्वामित्व !

'कंपनी सरकार' के दमन पर मरहम लगाने तथा उसकी तुलना में 'रानी सरकार' का राज्य अच्छा कहलवाने के लिए सन् १८५८ के बाद कई रचनात्मक प्रतीत होने वाले कदम लिये गये। सन् १८५८ के आसपास ही बम्बई, कलकत्ता व मद्रास में प्रेसीडेंसी कॉलेज या युनिवर्सिटी की स्थापना हुई। योजना के आगे के चरणों के लिए जो स्थानिक नेता तैयार करने थे उनकी शिक्षा व पश्चिम परस्त 'दीक्षा' के लिए इन कॉलेजों की स्थापना हुई। मोतीलाल नेहरु, अबुल कलाम आज़ाद, गोखले, तिलक, चितरंजन बसु (दीनबंधु) इत्यादि इन कालेजों में पढ़े-बढ़े।

सदाकाल के लिए बाहर से आये आततायी शासक के स्वरूप में अंग्रेज व उनके सूत्रधार इस देश में नहीं रहना चाहते थे - ऐसा करने पर वे विश्व में निंदा व घृणा के पात्र बनते। इसलिए Exit Policy बनाना भी जरूरी था, जिसमें बाह्य स्वरूप से उनकी Exit हो जाये, परंतु शाश्वत राज्य तो उन्हीं का चले।

चले जाने के लिए एसा माहौल बनानी जरूरी था जिसमें स्थानीय प्रजा स्वतंत्रता का आंदोलन करे और इस आंदोलन के लिए एक नेतागिरी की आवश्यकता थी। भारत की पारंपरिक नेतागिरी - महाजन संस्था, उनकी योजना के अनुकूल नहीं हो सकती थी, इसलिये किसी नयी व्यवस्था को बनाने के लिए कांग्रेस फ़्क्ष की स्थापना १८८५ में की गयी। स्थापना की एक अंग्रेज ने और उसकी कमान दे दी गई अंग्रेजों की युनिवर्सिटीयों तथा विलायत में उच्च (कानून की ही तो !) शिक्षा प्राप्त लोगों के हाथ में। संस्था तो बन गयी, किंतु सारे देश को सम्मोहित करके एकजुट बनाने की प्रतिभा जिसमें हो वैसा नेता नहीं मिला।

तभी अंग्रेजों की नजर पड़ी दक्षिण अफ्रिका में कार्यरत गांधीजी पर। दक्षिण अफ्रिका भी ब्रिटेन के ही आधीन था और गांधीजी ब्रिटिश दमन के खिलाफ वहाँ लड़ रहे थे। गांधीजी में उस प्रतिभा का दर्शन होते ही, गांधीजी के इर्द-गिर्द जमे उनके ब्रिटिश मित्रों (?) ने उन्हें भारत आकर आजादी का संग्राम शुरु करने के लिए समझाया और इस तरह सन् १९०८ में गांधीजी भारत आये। संस्था के रूप में कांग्रेस व राहयोगियों के रूप में ब्रिटिश शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाये हुए अन्य नेता और सर्वोच्च नेता के रूप में गांधीजी ! योजना का इतना दोष रहित ढाँचा तैयार हो गया कि अब आयी अगले कदम की बारी।

राजाशाही के रहते गोरों की भविष्य की योजना सफल नहीं हो सकती थी। अतः उनका आमूल विच्छेद आवश्यक था। इसलिए पर्यायी शासन व्यवस्था जरूरी थी - एसी व्यवस्था जो भविष्य में उनके ईशारों पर नाचे और वह व्यवस्था एक ही हो सकती थी - चुनाव पद्धति पर आधारित प्रजातंत्र। अब इस व्यवस्था के मूल डालने का समय आया और प्रायः सन् १९१९ में पहली बार People's Representation Act बनाया गया। पहली बार प्रायोगिक रूप में चुनाव कराये गये और वहीं पर उसे छोड़ दिया गया।

कांग्रेस के नेताओं के माध्यम से स्वतंत्रता की माँग को लेकर आन्दोलनों का सिलसिला शुरू किया गया। स्वतंत्रता की माँग को अस्वीकार करके उसकी तीव्रता बढ़ाई गई। नेताओं पर दमन करके प्रजा में उनकी छबी उभारी गई ताकि महाजन संस्था के स्थान पर नेतागिरी का यह नया स्वरूप पुष्ट होता जाये। नेताओं में फूट डालकर, अलग अलग विचारधारियों को पुष्ट करके भविष्य में अनेक राजनैतिक पक्ष बनें, उसकी नींव रखी गयी। भविष्य में स्थानीय लोगों द्वारा चलाई जाने वाली शासन व्यवस्था की नींव रखने के लिए सन् १९३५ में Government of India Act बनाया गया। इसी Act को आगे चलकर भारत के नये संविधान का आधार बनाया गया।

सन् १९३५ के Govt. of India Act के तहत १९३७ में चार प्रदेशों में प्रायोगिक रूप से फिर से चुनाव हुए और द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने पर इन प्रदेशों की धारा सभाओं को अचानक भंग कर दिया गया। सन् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन का साथ देने की शर्त पर स्वाधीनता का वचन दिया गया जिसे १९४२ में युद्ध समाप्त होने पर न पालने की बात की गयी। स्वतंत्रता की माँग को इस तरह और तीव्र बनाया गया और 'भारत छोड़ो' आंदोलन करवाया गया।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थापित 'लीग ऑफ नेशन्स' को भंग करके द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सन् १९४५ में 'युनाइटेड नेशन्स' की स्थापना हुई (जो अभी अपनी स्थापना के ५० 'सफल' वर्ष मना रही है!) भारत स्वतंत्र राष्ट्र न होते हुए भी उसे युनाइटेड नेशन्स का सदस्य बना दिया गया और इस तरह एक पिंजरे से मुक्ति के पहले ही उसे दूसरे पिंजरे में प्रवेश करा दिया गया। भारतीय संस्कृति में परमात्मा का स्वरूप निर्गुण, निराकार है। यूनो का पिंजरा भी वैसा ही निर्गुण, निराकार है, और जैसे आत्मा शाश्वत है, इस पिंजरे की गुलामी भी शाश्वत है !

१९४२ और १९४७ के बीच में गौहत्या व अन्य मामलों पर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भयंकर दंगे करवा कर इतनी घृणा फैलायी कि एक हजार वर्षों से भाईयों की तरह एक समाज में साथ साथ रहने वाले हिन्दु और मुसलमान, स्वतंत्रता मिलने पर एक राष्ट्र में साथ रहने को तैयार नहीं थे। बाहरी तौर पर दो राष्ट्रों के निर्माण का विरोध करते रह कर उस माँग को और पुष्ट किया और नेताओं में फूट डालने के लिए कांग्रेस व मुस्लिम लीग से अलग अलग मंत्रणायें की।

राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दु - मुसलमान के बीच फूट तो डाली गयी थी सन् १९०९ में, जब चुनाव प्रक्रिया के लिए मुस्लिमों की अलग Constituency बनायी गयी थी - 'मॉर्ली मिन्टो सुधार' के तहत। योजनाबद्ध कार्यशैली का और क्या प्रमाण चाहिये ?

प्रमाण की बात पर एक और प्रमाण की याद आयी। हालाँकि इतिहास के कालक्रम में यह बात कुछ पीछे की है। सन् १६६१ में पोर्तुगल के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह ब्रिटेन के राजकुमार से होने पर बम्बई का टापू दहेज में दिया था। बम्बई के टापू का स्वामित्व पोर्तुगल के राजा के पास कैसे आया ? वही स्वयंभू स्वामित्व !! यह टापू बाद में ब्रिटेन के राजा ने ईस्ट इंडिया कंपनी को 'लीझ' पर दे दिया ! खैर इतिहास के कालक्रम में वापस चलें।

आजादी देने के पूर्व सन् १९४६ में ही भारत का नया संविधान बनाने के लिए संविधान सभा का गठन हुआ। संविधान बनाने के लिए British Cabinet Mission ने मार्गदर्शक रूप रेखा दी और जिसे Steel Frame कहा जाता है वैसा संविधान बनाया। किसने माँगा था यह संविधान, कैसे प्रतिनिधी थे वे जिन्होंने यह संविधान बनाया, क्या पैघता है Independence Of India Act 1947 की, वगैरह मुद्दे तो एक विस्तृत निबंध का विषय बन सकते हैं।

अंततः १५ अगस्त १९४७ को देश को दो टुकड़ों में बाँट कर आजादी देने के नाटक के साथ इस षड़यंत्रकारी योजना का तीसरा चरण पूरा हुआ।

अब चलें चौथे और वर्तमान चरण की ओर, जिसका कार्यकाल है सन् १९४७ से सन् २०४७ या अगली शताब्दी के करीब मध्याह्न तक ।

यदि स्वतंत्रता आन्दोलन के फलस्वरूप ईमानदारी से यहाँ का राज्य छोड़कर चले जाना होता तो - 'लौ मंभालो अम्ना-वस्, हम तो यह चले !' कहकर अंग्रेज यहाँ से चले जाते । किन्तु नहीं, 'रीमोट कन्ट्रोल' से उनका सदाकाल राज्य चलता रहे एसी व्यवस्था, ऐसे कानून, एसा संविधान, एसी चुनावी व्यवस्था पर आधारित प्रजातंत्र की व्यवस्था, न्याय व्यवस्था वगैरह छोड़ गये । स्वतंत्र भारत के गवर्नर जनरल के रूप में लॉर्ड माउंटबेटन कुछ समय तक रहे ताकि तथाकथित 'ट्रांसीशन' के समय के दौरान कोई गड़बड़ न हो ।

संविधान के तहत प्रथम आम चुनाव तो १९५१ में हुए, किन्तु १९४७ और १९५१ के बीच कई कानून पास कर लिये गये । उस काल के दौरान कानून और संविधान के क्षेत्र में जो धाँधली हुई उसकी तह पाने के लिए किसी देशभक्त कानूनविद द्वारा गहरी खोजबीन की आवश्यकता है । इसके अलावा ब्रिटिश राज्यकाल के दौरान बने दर्जनों कानूनों को स्वतंत्र भारत ने ज्यों का त्यों adopt कर लिया । क्या था यह, नये स्वतंत्र राज्य का उदय या old wine in new bottle की तरह ब्रिटिश राज का सातता ?

स्वराज्य देते समय शास्त्रवासी और ब्रिटिश सत्ताधीश दोनों खुश थे । भोले भारतीय यह समझ कर कि उन्हें स्वयं याने स्वयं का राज मिला और ब्रिटिश सत्ताधीश यह समझकर कि उन्होंने 'स्व' याने स्वयं का राज भारत को दिया । पिछले ५० वर्षों में यह दूसरी व्याख्या ही फलीभूत होती नजर आती है ।

स्वतंत्रता मिलते ही 'ऑक्टोपस' प्राणी के अनेकों 'टेन्टेकल्स' की तरह 'यूनो' की अनेक बाहों ने भारत के हर क्षेत्र को अपनी चुंगाल में लेना शुरू किया । नयी नेतागिरी को पश्चिमी राष्ट्रों की तड़क भड़क दिखा कर, भारत को भी एक नया अमेरिका बनाने का उद्देश्य बनाकर, पश्चिमी विकास की ढाँचा अपनाने को समझाया गया और पश्चिम की शिक्षा प्रणाली (जो भारत में १०० वर्षों के अभ्यास से पुख्ता हो गई थी) से शिक्षित अफसरशाही ने उस ढाँचे को अपनाना और उसके अनुसार पंचवर्षीय योजनायें बनाना शुरू किया । उसकी उपलब्धि यह है कि आज भारत पर ७ लाख करोड़ रुपये का विदेशी कर्ज है । लूट के दाम पर भी भारत से कच्चा माल ले जाने वाला ब्रिटन १९४७ में भारत का कर्जदार था । आज भारत मेक्सिको और ब्राजिल के बाद दुनिया का सबसे बड़ा कर्जदार देश है ।

१९९२ के षडयंत्र की ओर फिर से चलें । दूसरे देशों से आये नागरिकों को अपने देश में नागरिकत्व देने के लिए अमेरिका ने 'ग्रीन कार्ड' की पद्धति बनाकर इस सिद्धांत को प्रस्थापित किया कि एक देश का नागरिक दूसरे देश का नागरिक भी बन सकता है । देश को गरीब बनाकर, विदेशी सहायता पर निर्भर बनाकर, अब उस सहायता - पूंजी निवेश के साथ 'दोहरी नागरिकता' की शर्त धीरे से जोड़ी जा रही है । कुछ लाख या करोड़ रुपयों की पूंजी भारत में लगाने के एवज में एसी पूंजी लगाने वाले को भारत का नागरिकत्व दिया जायेगा - हमारे (या उनके ?!) प्रधानमंत्री एसा वादा पश्चिम के देशों को कर आये हैं। अब विदेशी पूंजी प्रति इस देश के नागरिक बन जायेंगे और चूँकि संविधान के अनुसार हर नागरिक को प्रजातंत्र की प्रक्रिया में (चुनाव में) हिस्सा लेने का अधिकार है, ये विदेशी (जो अब भारतीय नागरिक होंगे) हक से हमारी नगरपालिकाओं, विधानसभाओं, और संसद के सदस्य बन सकेंगे। चुनाव पद्धति जिस तरह से चलती है उसमें 'मनी पावर' व 'मसल पावर' ही मुख्य है और 'मनी पावर' की तो इन विदेशियों के पास कोई कमी नहीं है ।

सन् १९९६ के आम चुनाव शायद देश के आखरी आम चुनाव होंगे जिसमें सभी चुने हुए प्रतिनिधि भारतीय होंगे । इसके बाद के सन् २००१ के चुनाव में कुछेक गौर चहरे विधानसभाओं में व लोकसभा में नजर आयेगें (बाकायदा भारतीय नागरिक

के रूप में !) और उसके बाद के याने सन् २००६ के चुनाव में कुछेक ही भारतीय चेहरे नजर आयेंगे ! दूसरी एक बात यह भी है कि सन् २००१ से ईसाईयों का नया सहस्र युग (मिलेनियम) शुरू हो रहा है और भारत में पश्चिमात्ियों का राज्य इस शुभ (!) अवसर पर शुरू न हो तो कब होगा ?

नये सहस्र युग की बात पर से एक और गौर करने योग्य बात है । इस युग का स्वागत करने की तैयारी पिछले वर्ष से शुरू हो गई है और पोप महाशय सारे विश्व का दौरा करते हुए ईसाईयों से लगातार कहते आ रहे हैं कि इस अवसर पर चर्च संस्था को अपने पापों की जगत से क्षमा मांगनी चाहिये । किन्तु पापों की क्षमा ? क्षमा माग कर दिल जीतने की अच्छी चाल है, ताकि पिछला हिंसाब साफ करके योजना को बिना किसी आत्मवंचना के बोझ से आगे बढ़ाया जाय ।

भारतीय संस्कृति में जमीन, गाय व गाय का दूध - ये तीनों चीजें क्रय-विक्रय की वस्तु नहीं थी । इनका आदान प्रदान यदि होता था तो दान के रूप में ही - मोल-भाव लगाकर नहीं । अंग्रेजों ने अपना राज्य स्थापित करके एक पाई या पैसे प्रति गज के हिसाब से जमीन बेचना शुरू किया । कीमत का महत्व नहीं था, किन्तु जमीनें खरीदी और बेची जा सकती हैं, यह सिद्धान्त प्रस्थापित करना महत्व का था । इस सिद्धान्त को पुष्ट करने के बाद अब उदारकरण व वैश्वीकरण के नाम पर भारतीय नागरिक ही नहीं, कोई भी जमीनें खरीद सकता है । जर्मन टाऊनशिप, जापानी टाऊनशिप, टेकनोलोजी पार्क आदि के नाम पर हजारों एकड़ जमीनें विदेशी खरीद रहे हैं । यदि १०० एकड़ जमीन बिक सकती है, तो १००० एकड़ भी बिक सकती हैं, लाख एकड़ भी बिक सकती है, सिर्फ पैसा चाहिये जो हमें लूट लूट कर पश्चिम के देशों ने खूब इकट्ठा कर लिया है । यदि तर्क के लिए मान लिया जाय कि सारी जमीन विदेशियों ने दाम देकर खरीद ली, तो भारतीय किस हक से और कौन सी जमीन पर रहेंगे ? यदि रह सकेंगे तो सिर्फ उनकी मेहरबानी पर, उनके गुलाम बनकर ।

शासनकर्ता के रूप में भी वही होंगे, अलबत्ता अब भारतीय के रूप में, हमारी और आपकी तरह संविधान से अपना हक पाकर, और तब पूरा होगा एक नये अमरिका का निर्माण ।

इस दीर्घकालीन षडयंत्र का एक और पहलु है - इस देश का नामकरण । इस देश का अपना मूल नाम है 'भारत' - भारत राजा के नाम पर । हिन्दु प्रजा का देश होने के नाते दूसरा नाम है - हिन्दुस्तान । किन्तु उसे भी बदल कर 'इन्डिया' बन गया, कैसे ? नाम बदलने की सत्ता कैसे आयी - वही स्वयंभू स्वामित्व ! हमारे संविधान में पहली ही पंक्ति में दो बार 'इन्डिया' शब्द का प्रयोग करके इस नामकरण को सदा के लिए पुष्ट कर लिया गया है । यदि हम सचमुच स्वतंत्र होते तो क्या अपना 'नाम'-निशान यूँ मिटता ?

इतना सब होने पर भी अभी मूल उद्देश्य तो सर्वथा सिद्ध नहीं हुआ है - "एक प्रजा, श्वेत प्रजा, एक धर्म, ईसाई धर्म" । प्रजा के नाश के लिए उसे भुखमरी, गरीबी की तरफ धकेला जा रहा है, ताकि सोमालिया और इथियोपिया की तरह प्रजा का एक बड़ा हिस्सा नष्ट हो जाये । गरीबी से बचने वाले सभ्रांत हिस्से को सांस्कृतिक रूप से इतना पतित किया जा रहा है कि मानव के रूप में उनका अस्तित्व कोई अर्थ न रखे । एक तरफ से चर्च संस्था परिवार नियोजन का विरोध करती हैं - ताकि श्वेत प्रजा की निरंकुश वृद्धि होती रहे, जो भारत जैसे देशों में बस सके, और दूसरी तरफ भारत की 'विस्फोटक' जनसंख्या की दुहाई देकर परिवार नियोजन का विराट कार्यक्रम 'ग्रुनिसेफ', 'डब्ल्यू.एच.ओ.' वगैरह के माध्यम से चलाया जा रहा है जिसके लिए कण्डों की धनराशि सहायता रूप में दी जा रही है । यदि भारत की जनसंख्या के आंकड़ों की समीक्षा की जाये तो आयु प्रमाण में बढ़ी आयु के लोगों का प्रमाण निरंतर बढ़ता जा रहा है और युवा लोगों का प्रमाण कम होता जा रहा है । किसी भी अन्यायी परिस्थिति का विरोध - विद्रोह युवा पीढ़ी ही कर सकती है । इसलिए योजना एसी बनायी जा रही है कि जब इस षडयंत्र का Final Assault हो तब देश में युवा पीढ़ी बिल्कुल कम हो और देश पर अंतिम प्रहार किया जा सके । परिवार नियोजन के पीछे यह भेद है - अन्यथा परम करुणामयी धरती माता की तो यह क्षमता है कि आज की विश्व की कुल आबादी से दुगनी आबादी

का भरणपोषण करने की भी उसमें क्षमता है। प्रश्न न्यायी वितरण व्यवस्था का है, जो अन्यायियों के हाथ में है - जो करोड़ों टन अनाज दरिया में फेंक देते हैं, दूध के उत्पादन के नियंत्रण के लिए लाखों गायों की हत्या करते हैं, अनाज गोदामों में सड़े और गरीब भूखों गंरे एसी स्थिति बनाते हैं।

गोरों की इस जाल में खतरा था भारत की राजशाही व्यवस्था का। इसलिए स्वतंत्रता के बाद सभी देशी राजाओं को भारतीय गणतंत्र में शामिल कर लिया गया। दुर्भाग्य से सरदार पटेल जैसे बुद्धिशाली व्यक्ति इस चाल को नहीं समझ पाये और देशी राजाओं के विलीनीकरण का यह भगीरथ कार्य अपने हाथों से कर गये। पहले राजाओं को उनके निर्वाह के लिए वार्षिक 'प्रिवी-पर्स' दिया गया और फिर विश्वासघात करके प्रजातंत्र और संसद की सर्वोपरिता का बहाना बनाकर वह प्रिवी-पर्स भी छीन लिया। कौन था इसके पीछे? यदि यह खर्च बोझ था तो फिर आज के नये राजाओं के पीछे जो खर्च होता है, वह क्या कम है? किंतु ये नये राजा तो चूंकि 'उनका' राज्य चलाते हैं इसलिये यह खर्च जायज है!

भूख और गरीबी से विनाश और सांस्कृतिक रूप से अधःपतन, ये दोनों मिलकर आने वाले दशकों, शतकों में स्थानीय प्रजा का पूर्ण विनाश करेंगे और बचे-खुचे लोग 'रेड-इंडियन्स' की तरह देश के किसी कोने में जीवन बितायेंगे।

अब एक धर्म - ईसाई धर्म की बात। शूद्रों के धर्मांतर से चला यह सिलसिला गुढ़ रूप से किंतु बड़े पैमाने पर आज भी चल रहा है। श्री अरुण शौरी की पुस्तक 'मिशनरीस इन इंडिया' पढ़ने पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दलित - ईसाईयों आरक्षण की मांग की है और कठपुतली की तरह नाचती यह सरकार एसा आरक्षण मान भी लेगी। आरक्षण की सुविधा के लालच से और ज्यादा लोग ईसाई बनेंगे और इस तरह से क्रम चलता रहेगा। धर्मांतर औपचारिक रूप से नहीं करनेवाला वर्ग भी अपने दैनिक जीवन, पहनावे, रीति-रिवाज, सोचने का ढंग, व्यवसाय, सामाजिक जीवन वगैरह में हिन्दू या वैदिक संस्कृति से मीलों दूर जाकर ईसाई संस्कृति के नजदीक आ गया है। मस्तक और छाती पर चाहे वह क्रॉस न बनाता हो, अभी भी राम व शिव या शक्ति के मंदिर में जाता हो, वैचारिक रूप से तो वह ईसाई संस्कृति से करीब करीब एकरूप हो ही गया है।

इस सारे षडयंत्र के चलते आज देश की उन्नति, प्रजा की अवनति; खेती की उन्नति, किसान की अवनति; उद्योगों की उन्नति, मजदूर की अवनति; शिक्षा की उन्नति, विद्यार्थी की अवनति, वगैरह वगैरह देखने को मिलती है।

एक बात और गौर करने लायक है। वह है भारत के लिए काश्मीर का प्रश्न। पड़ोसी देशों से सफल टक्कर ले सकने की क्षमता वाले देश में क्या इतनी क्षमता नहीं कि वह इस प्रश्न को सुलझा ले? किंतु गोरी सत्तायें नहीं चाहती कि यह प्रश्न सुलझे, इसलिए कठपुतलियों की एसी रस्सी खींची जा रही है कि यह प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहे। सही रहस्य यह है कि - 'गेग-प्लान' के मुताबिक काश्मीर न भारत को देना है न पाकिस्तान को। वहाँ की आबोहवा यूरोप की आबोहवा के समान होने से वह भविष्य में भारत की राजधानी बनाने के लिए सुरक्षित रखा गया है। वह राजधानी बनेगा गोरों की संपूर्ण सत्ता भारत में होने के बाद। काश्मीर के Annexation का दस्तावेज खो गया है। क्यों, कैसे?

यही कारण है कि आम भारतीय काश्मीर में जमीन, मकान नहीं खरीद सकता, उद्योग या व्यवसाय नहीं लगा सकता, और तो और संविधान के कई हिस्से और भारत के कई कानून काश्मीर में लागू नहीं होते। यह कैसा सार्वभौमत्व है और कैसे काश्मीर भारत का अभिन्न अंग है?

षडयंत्र की यह परंपरा काफी लम्बी है। कई पहलू हैं, कई गुप्ततायें हैं, कई धक्के महसूस होने हैं और शायद इसीलिये जरूरी है- नई आजादी की, सच्ची आजादी की, "यदा यदा ही धर्मस्य..." का वादा करनेवाले चक्रधारी को अपना वादा याद दिलाने की।

॥ महाजनम् ॥ : ४०३, विनीता, सिद्धाचल बाटिका, रामनगर, साबरमती, अहमदाबाद - ३८० ००५ टे.नं. ७५००७३, ७५०६१५६
 विनियोग परिवार : बी-२/१०४, वैभव, जांबली गली, बोरीवली (पश्चिम), मुंबई - ४०००९२ टे. नं. : ८०७७७८१ टेली फेक्स : ८०२०७४९
 ॥ महाजनम् ॥ : ५१०, प्रसाद चेम्बर्स, ओपेरा हाउस, मुंबई - ४. टे.नं. : ३६८५२२०, ३६१९७४१ टेली फेक्स : ३६७७४०९
 ॥ महाजनम् ॥ : सी-५, जयदर्शन इलेट, अर्थ. डे. कोलेज-नी बाजुभा, आश्रम रोड, अमदावाड - १ ● टे. नं. : ५५८५५४९-४२
 ॥ महाजनम् ॥ : १५८४, मनसुपभाई-नी पोण, टैकशाण पास, काणपुर, अमदावाड-१ ● टे. नं. : २१४९८९८, ३८२७३७

नये संविधान की रचना क्यों हुई?

सारा नया संविधान चार पुरुषार्थों पर आधारित जीवनव्यवस्था को पलट देने के उद्देश से ब्रिटिशों ने बनवा लिया है

नया संविधान देश के उदय (प्रजा के नहीं!) की दृष्टि से और बाहर से आनेवाली श्वेत प्रजा के हित की दृष्टि से रचवाया गया है। यह उनके लिये अवश्य ही आशिर्वाद समान है और उनके दृष्टिकोण से प्रशंसा पात्र तथा प्रगतिशील भी है। किंतु हिन्दु प्रजा के हितों की रक्षा के दृष्टिकोण से बहुत कुछ विचारने योग्य है।

भारत में हिन्दू प्रजाजनों के हजारों स्वतंत्र हित हो सकते हैं। किन्तु 'भौतिक अधिकारों' के नाम से शान्तिक प्रजा के कुछेक सीमित अधिकार ही नये संविधान में शामिल किये गये हैं। इसका अर्थ यह होता है कि- अन्य जो कोई भी अधिकार हों, वे सभी रद्द माने जाते हैं। जो भी हिन्दू (हिन्दुस्तान में रहनेवाले मूल प्रजाजन) संविधान द्वारा मान्य नये हितों से/अधिकारों से खुश हैं और इस कारण संविधान के प्रति वफादारी भरी ममता रखते हैं, वे अन्य अधिकारों के रद्द होने में सहमत हैं और इस तरह वे अपने सह-प्रजाजनों के हित के विरुद्ध हैं, यह स्वयमेव निश्चित हो जाता है। अपने सह-प्रजाजनों के अनेकों हित रद्द कराये उन्हें अपने सह-प्रजाजनों का हितैषी कैसे माना जा सकता है?

हालाँकि, नये संविधान को मानने वालों का एसा आशय न होते हुए भी, विदेशियों द्वारा हिन्दुस्तान की मूल प्रजा के अधिकारों की मर्यादा स्वीकार लेने में वे ठगे ही गये हैं और इस तरह स्वयं पर भी अन्याय कर रहे हैं। इतना ही नहीं, समस्त हिन्दु प्रजा तथा समस्त अश्वेत प्रजा को भी अन्याय का भोग बनाते हैं। विदेशों में उनकी महत्ता व प्रशंसा का मुख्य कारण यही है।

सर्वप्रथम तो यह समझ लेना आवश्यक है कि भारत की प्रजा को नये संविधान की आवश्यकता ही नहीं थी। आज भी नहीं है। पारंपरिक संविधान व उससे संलग्न कानून हिन्दू प्रजा के पास हैं। आवश्यकता हो वहाँ उन्हें ठीक-ठाक किया जा सकता है। नया संविधान बनाने की जरूरत ही नहीं थी। नये संविधान की रचना भी विदेशियों ने परदेशी संविधानों के आधार पर की है और इस देश के कानूनविदों की सहानुभूति से नया संविधान बनवा लिया है। वास्तव में संविधान का उद्देश्य इस प्रकार होना चाहिये -

“मानवजाति के लिये धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की अहिंसक संस्कृति का जीवन ही आदर्श है और हर तरह से इस आदर्श को टिकाये रखना है”

इतना संक्षिप्त उद्देश ही पर्याप्त था।

किंतु उसके बदले निम्नलिखित लंबा, संदिग्ध और भ्रामक उद्देश्य नये संविधान में लिखा गया :

आमुखः हम, भारतीय प्रजाजन, भारत को एक सार्वभौम, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, गणतंत्र के रूप में स्थापित करने का तथा उसके सभी नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, मान्यता, धर्म व उपासना की स्वतंत्रता,

दरज्जे व मौके की समानता,

प्राप्त हो वैसा करने का और सभी नागरिकों में व्यक्ति का गौरव, राष्ट्र की एकता और अखंडितता सुदृढ हो वैसा बंधुत्व विकसित करने का गंभीरतापूर्वक संकल्प करके हमारी संविधान सभा में २६ नवंबर, १९४९ को यह संविधान अंगीकार करके, उसे अधिनियमित करके, स्वयं को अर्पण करते हैं।

(हिन्दी अनुवाद : भारत के संविधान से)

प्रजा के नाम से (We, the people of India) यह संकल्प लिया गया है और २६ नवंबर १९४९ को संविधान अंगीकार किया गया है।

एसे किसी स्थान या तिथि की कोई जानकारी नहीं है जब भारत की प्रजा या उसके निर्विवाद रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि एकत्र हुए हों और उपरोक्त प्रकार से संविधान के मार्ग से जीवन जीया जाय एसा निर्णय लिया हो।

हाँ, ब्रिटिश सरकार ने ही इस घटना को जन्म दिया है जिसके परिणाम स्वरूप यह संविधान बना और उस पर अमल शुरू हुआ और संविधान पूरी प्रजा की भागीदारी से, प्रजा के नाम से हुआ एसा भी कहा जाता है। सामान्य तरह से जिन्हे विधिपूर्वक कहा जा सके एसे चुनाव तो सर्वप्रथम बार १९५२ में हुए। उसमें भी मताधिकार प्राप्त लोगों में से बहुत कम ने मतदान किया था। तो फिर १९४९ में (या १९४६ से ही जब संविधान सभा गठित हुई और संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई) सभी प्रजाजनों का विधिवत प्रतिनिधित्व कैसे मान लिया जाय ? यह तो संविधान के अंगीकार करने की बार हुई। संविधान की रचना में भी समस्त प्रजा का प्रतिनिधित्व कहाँ था ? आज भी जिसे प्रतिनिधित्व कहा जाता है वह भी न्यायसर है क्या ? यह प्रश्न भी बिलकुल अलग ही है। प्रजा के विधिवत प्रतिनिधि -- आगेवान, धर्मगुरु वर्ग, महाजन के अग्रणी, राजा, सामाजिक अग्रणी, आर्थिक/व्यावसायिक अग्रणी- यह वर्ग ही अलग है। इन्हे दूर रखने के लिये, एक ईसाई पादरी द्वारा स्थापित कांग्रेस नाम की संस्था के हाथ में सत्ता सोंपने के लिये एक अन्य तरह से प्रतिनिधि प्राप्त करके संविधान की रचना विदेशियों ने करवा ली है; यही सत्य हकीकत है।

तो फिर, हिन्दू प्रजा को इस संविधान से न्याय की दृष्टि से क्या लेना-देना ? परंतु हिन्दुस्तान की प्रजा का तथाकथित शिक्षित वर्ग इस भ्रम से बाहर नहीं निकल पाया है।

इस स्थिति में हिन्दू प्रजा के इस देश में उसके ही मूलभूत हितों की रक्षा की उम्मीद कैसे की जाये ? यह एक विकट प्रश्न है।

विशाल और बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा की अपने ही देश में जब यह स्थिति है तो अन्य अश्वेत प्रजाओं की उनके देश में विदेशियों ने क्या स्थिति रखी होगी ?

चर्च संस्था के मार्गदर्शन में तद् तद् देश की अश्वेत प्रजा के लिये श्वेत प्रजा ने जो फंदे बनाये हैं, उन्हे गले में डाल कर सभी को घूमना पड़ता है। मोहक शब्दों- स्वराज्य, स्वतंत्रता, लोकतंत्र- के मात्र गीत गाने के अलावा और क्या होता है ? और श्वेत प्रजाजन भी इस तरह के स्वराज्य, स्वतंत्रता और लोकतंत्र की स्थापना होने पर प्रसन्न होने का नाटक करने के अलावा क्या करते हैं ?

नये संविधान की रचना के लिये ब्रिटिशरों ने १९३५ का गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट तैयार रखा था। तदुपरांत पिछले ४५० वर्षों में एकत्र की गयी जानकारीयां भी तैयार रखी थीं। अमरीका, आयरलैंड वगैरह के संविधान तैयार रखे थे। अन्य कई योजनाओं तथा ब्रिटन के "इंडिया ऑफिस" ने तैयार किये कई विषयों पर कानूनों के कच्चे प्रारूप भी तैयार रखे थे। तदुपरांत भारत में ब्रिटिश हुकूमत के सरकारी दफतरों में भविष्य की योजनाओं के अनुरूप प्रारूप भी तैयार रखे गये थे। इन सभी के आधार पर ही लोह-षकट (Steel-Frame) में बंधी राज्य-व्यवस्था कांग्रेस के नेता चलाते आये हैं, चला रहे हैं। इसके अलावा और क्या है ? सारी सलाह बाहर (विदेशों) से ली जाती है। उल्लेखनीय है कि कर-व्यवस्था के निर्माण के लिये मि. काल्डोर एक वर्ष भारत में रूके थे।

विधानसभाओं/लोकसभा में हो-हल्ला करने वाले शौकीन वकीलों की समझ-से यह मायाजाल परे है। उनको समझ न आये, यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि भारत की प्रजा के सच्चे हित-चिंतकों तथा प्रजावत्सल महापुरुषों के सच्चे प्रतिनिधियों को दूर रखकर आधुनिक वकीलों वगैरह शिक्षितों को बनावटी तरीके से प्रजा के प्रतिनिधि करार देकर अपने हित का नया संविधान ब्रिटिशों ने बनवा लिया है। ये बन-बैठे प्रतिनिधि इतनी चतुराई से अग्रिम पंक्तियों में जम गये हैं कि सच्चा हितस्वी वर्ग आगे आ ही न पाये और हर पांच वर्षों में इसी वर्ग की सत्ता-वापसी का पुनरावर्तन हुआ करे।

जबकि सांस्कृतिक संविधान तो समस्त प्रजा के हित की दृष्टि से परापूर्व से ही प्रवर्तमान है। उसमें नये आदर्शों की खिचड़ी मिलाकर आज प्रजा के जीवन में दोनों का मिश्र रूप से अमल चालू है। एक संविधान के चक्र दांयी तरफ से बांयी तरफ घूमते हैं तो दूसरे संविधान के चक्र बांयी तरफ से दांयी तरफ घूमते हैं। दोनों में समन्वय नहीं, अपितु स्पर्धा है।

इसलिये, इन दोनों चक्रों में जिस समय जिस पक्ष का जोर होता है वह उस समय दूसरे पक्ष के चक्र के आरों को तोड़कर उसे धारहीन बना सकता है। किंतु खूबी यह है कि बहुधा नवसर्जन के चक्र को ही आज ज्यादा धारदार बनाया गया है, और उसका उद्देश्य ही सांस्कृतिक जीवन को नष्ट करना है। उसे बहुत तेज चलाया जाता है। इस नये चक्र के पीछे चर्च संस्था, श्वेत प्रजा, उसकी बलवान सत्तायें, धर्म, संपत्तियाँ, आधुनिक विज्ञान, यंत्रवाद, बौद्धिक व आर्थिक प्रभाव व अणुबम जैसे भयंकर शस्त्रों का बल है, जिन्हे दिन-ब-दिन अधिक मजबूत व अधिक गतिशील किया जाता है। सांस्कृतिक चक्र के पीछे रंगीन/अश्वेत प्रजा का पुण्य, प्राचीन विश्ववत्सल महापुरुषों का तपोबल, इस भूमि में जन्मे महापुरुषों की उत्तम प्रेरणा के अणु तथा जीवन में विरासत में मिली कई सांस्कृतिक जीवन-व्यवस्थाओं के बल काम करते हैं।

नवसर्जन के लिये भारत की ही हिन्दू प्रजा के 'सुधारक' विचार के तथाकथित क्रांतिकारी लोगों द्वारा बनाये गये माध्यम काम कर रहे हैं। सांस्कृतिक ताकतों को नुकसान पहुँचाकर प्रागतिक/सुधारक ताकतों को सहायक हो इस तरह से चर्च संस्था के संचालकों ने इन माध्यमों को 'फिट' कर लिया है, ताकि हिन्दू प्रजा कभी एक मत पर न आ सके, स्वहित के सच्चे मार्ग पर न आ सके। मजबूत लोहे की पाटों की बीच प्रजा पिस जाये एसी दशा अपने ही भाईयों की इन लोगों ने कर दी है। यह मतभेद हिन्दू प्रजा को एक विचार पर आकर एक-संपी (एकता व एक-संपी होने में अंतर है) करने दे एसा संभव नहीं है। और इस स्थिति का दोषारोपण होता है भारत के जाति-भेदों और धर्म-भेदों पर। संस्कृति के बारे में सभी एकमत हैं किन्तु बड़ी फूट डालने वाला है आधुनिक संविधान और उसके आदर्श। संस्कृति के आदर्श और अनात्मवादी/भौतिक प्रगतिवाद के आदर्शों का मेल कैसे हो? अर्थात् प्रगतिवादी आदर्श प्रजा की एकता के लिये मुख्य बाधक ताकत हैं।

भारतीय प्रजा खुद के लिये नहीं परंतु समस्त विश्व के भले के लिये जीती आयी है और आज भी जीना चाहती है। उसके संत इस बात के सबसे बड़े प्रमाण हैं।

प्रजा के जीवन में सांस्कृतिक ताकतें आज भी किस तरह काम कर रही हैं? उनको नष्ट करने के लिये क्या व्यवस्थाएँ की गयी हैं? इतने प्रचंड प्रहारों के बावजूद यह प्रजा अभी भी कई अंशों में अपने मूल रूप में टिकी हुई है, तो उसकी आंतरिक ताकत कितनी होगी? इन विषयों पर तो स्वतंत्र निबंध की आवश्यकता है।

(नोट : यह लेख सन् १९६५ के आसपास लिखा गया था)

- स्व. पंडित प्रभुदास बेचरदास पारेख



न्याय - कानून - राज्यसत्ता

न्याय, कानून और राज्यसत्ता इन तीनों परिवर्तनों का आंतरिक संबंध, एक दूसरे की अपेक्षा से अग्रता क्रम और प्रजा जीवन पर इन तीनों का प्रभुत्व; इन सबका गंभीरता से विचार करना जरूरी है।

इस देश के प्राचीन संतो और महापुरुषों ने जगत को प्रदान की हुई व्यवस्थाओं के अन्तर्गत न्याय को धर्म का पर्याय मानकर सर्वोच्च स्थान पर बिराजित किया था। आज न्याय और कानून एक-दूसरे के पर्याय माने जा रहे हैं, जो एक भ्रम है। ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं। कानून के बिना भी न्याय हो सकता है, लेकिन न्याय के बिना कानून नहीं हो सकता।

कानून का Concept आया कहाँ से ? उत्क्रांतिवाद को मानने वाले इतिहासकारों की दृष्टि में इसका इतिहास कहना हो, तो इस तरह से कहना चाहिए कि - मानव इस सृष्टि में अकेला था, कहीं भी रहता था, कहीं भी खाता था, कहीं भी भटकता था। लेकिन समय के साथ-साथ उसने समुदाय में रहना सीख लिया। इस प्रकार के छोटे-छोटे अनेक समूहों की रचना हुई, इससे पारस्परिक व्यवहार एवं वर्तन के नियम बने। ये नियम नैतिक थे, इसलिये इन्हें नैतिक कानून कहा जा सकता है। तत्पश्चात् लोगों को लगा कि उनकी संख्या और व्यवहार इतने व्यापक हो गए हैं कि कानून का अमल कराने के लिए सत्ता की जरूरत है, इसलिए उन्होंने सत्ता की स्थापना की। सत्ता को कानून का अमल भी सौंपा गया एवं नये कानून बनाने का अधिकार भी दिया गया। इस प्रकार कानून और सत्ता परस्परावलंबी हुए। फिर भी कानून बनाने की सत्ता मूलरूप से कहाँ से आई यह प्रश्न आज भी अनुत्तर ही है।

आधुनिक राज्यव्यवस्था ने कानूनों का जंगल खड़ा किया। गणतंत्र राज्यप्रणाली ने उन कानूनों को बनाने की विचित्र व्यवस्था खड़ी की। बहुमतवाद- और जो भ्रष्टाचार से भी बनाया जा सके ऐसे बहुमतवाद - के हाथ में कानून बनाने की सत्ता आयी और उन कानूनों को uphold करना न्यायपालिका का कर्तव्य माना गया। इन सारी व्यवस्थाओं में न्याय का स्थान तो पाताल में चला गया।

न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठनेवाला व्यक्ति सज्जन हो, निष्पक्षपाती हो, विवेकी हो, धर्म की सर्वोपरिता स्वीकारता हो, हेतु और अनुबन्ध का सन्तुलन बनाए रखने की दृष्टिवाला हो, तो किसी भी कानून (आज के Codified laws) के बिना भी न्याय दे सकता है। दूसरी ओर कितने ही Codified laws हों, फिर भी उसमें न्याय का तत्त्व न हो तो न्याय नहीं हो सकता। न्याय और कानून यह दोनों भिन्न विषय हैं।

न्याय, कानून और राज्यसत्ता को एक त्रिकोण के रूप में कल्पित करें तो तीन विकल्प संभवित हैं :

(अ) त्रिकोण के शीर्ष स्थान पर न्याय हो और त्रिकोण की आधार रेखा के दोनों ओर कानून तथा राज्यसत्ता हों।

(ब) त्रिकोण के शीर्ष स्थान पर कानून हो और त्रिकोण की आधार रेखा के दोनों ओर न्याय एवं राज्यसत्ता हों।

(क) त्रिकोण के शीर्ष स्थान पर राज्यसत्ता हो और त्रिकोण की आधार रेखा के दोनों ओर न्याय तथा कानून हों।

सही व्यवस्था पहले विकल्प के अनुसार होनी चाहिए। न्याय सर्वोपरि होना चाहिए, कानून और राज्य व्यवस्था उनके सहायक होने चाहिए, परन्तु वर्तमान न्यायतंत्र में कानून सर्वोच्च स्थान पर है। कानून मतलब

Codified laws. राज्यसत्ता भी उसके आगे झुकती है एवं न्याय भी नीचे के स्थान पर है। परन्तु, कानून जो दूसरे विकल्प में शीर्ष पर है, उसे बनाने का अधिकार तो राज्यसत्ता को है, इसलिए वास्तविक रूप से राज्यसत्ता ही सर्वोपरि है, एवं न्याय और कानून दोनों उसकी कठपूतली हैं। वर्तमान में जो स्थिति प्रवृत्त है वह तीसरे विकल्प के अनुसार है।

अपने देश की न्यायपालिका में सुप्रीम कोर्ट का सर्वोच्च स्थान है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के द्वारा दिए गए अनेक फैसलों को राज्यसत्ता ने बाद में संसद में विपरीत कानून बनाकर बदल दिये जाने के किस्से भी हैं। इसलिए यह बात निर्विवाद है कि वर्तमान व्यवस्था में राज्यसत्ता ही सर्वोपरि है।

राज्यसत्ता को कानून बनाने का अधिकार मिला कहाँ से ? राज्यसत्ता विधानसभाओं में और संसद में कानून बनाती है, और ऐसे कानून बनाने की सत्ता के मूल में संविधान को आगे किया जाता है। संविधान किसने और किस सत्ता से बनाया ? संविधान की रचना की संविधान-सभा ने और संविधान सभा की रचना हुई इंग्लेन्ड की पार्लियामेंट के द्वारा निर्मित कानून से, इंग्लेन्ड की पार्लियामेंट को ऐसे कानून बनाने की सत्ता कहाँ से मिली ? शायद इसका जवाब यह मिले कि भारत इंग्लेन्ड का उपनिवेश राष्ट्र था, इसलिए उसके लिये कानून इंग्लेन्ड बना सका। परन्तु भारत इंग्लेन्ड का उपनिवेश राष्ट्र कैसे बना ? यह प्रश्न उन सभी राष्ट्रों के संदर्भ में हो सकता है जो एक समय ब्रिटीश राज्य के गुलाम थे, और अब “कोमन वेल्थ” (सामुहिक सम्पत्ति) के रूप में परोक्ष रीति से ब्रिटेन के आज भी गुलाम हैं। ब्रिटेन की इस सत्ता का मूल १४९३ में जारी किया गया पोप का फतवा है। उसका लम्बा इतिहास है जिसमें जाने से विषयान्तर होगा।

फिर से न्याय, कानून और राज्यसत्ता के त्रिकोण की तरफ चलें। राज्यसत्ता की कानून बनाने की सत्ता मर्यादित है या अमर्यादित ? संविधान में तीन सूचियों द्वारा - केन्द्र, राज्य और मिश्र - ऐसे कानून बनाने के विषय दर्शाये गए हैं, लेकिन Residuary Powers द्वारा इस सूचि से बाहर रहने वाले सारे विषयों को भी समा लिया गया है। अर्थात् किसी भी विषय पर कानून बनाने की अमर्यादित सत्ता राज्यतंत्र अपने पास रखता है। प्रजा के जीवन के प्रत्येक अंगो को अपने नियन्त्रण में रखने का कानून राज्यसत्ता बना सकती है। सामाजिक, धार्मिक, राजकीय और आर्थिक, हर एक विषय के लिए राज्य कानून बना सकता है और चाहे ऐसे नियमों को लाद सकता है। प्राकृतिक सम्पदाओं को राज्यसत्ता अपनी मालिकी का मान उठाने के लिए कानून बना सकती है।

इस तरह बनाए गए कानूनों को न्याय की दृष्टि से मूल्यांकित करने की और जाँचने - परखने की कोई व्यवस्था नहीं है। इन्कम-टेक्स का कितना दर न्यायी है- १०%, २०%, ५०%, ७०%, ९०% ? तो राज्यसत्ता को ठीक लगे वह! कोई व्यक्ति गुनाह करके फरार हो जाए तो उसके निर्दोष परिवारजनों को - पुत्र को, पिता को, भाई को, पति को, पत्नी को लोकअप में बन्द किया जा सकता है ? हाँ, राज्यसत्ता को जैसा ठीक लगे ! सामान्य प्रजा के लिए और राजनीतिज्ञों / राज्यअधिकारीओं के लिए फौजदारी काम चलाने की रीत अलग होनी चाहिए ? हाँ, होनी चाहिए! किस वस्तु पर टेक्स लगना चाहिए - व्यक्ति अपने बैंक खाते से पैसे निकाले, उसके उपर ? एक सज्जन मालिक अपने नौकरों को उदारता से कुछेक सहूलियत दे, उसके उपर ? मांस के उत्पादन को सबसीडी देने के लिए शाकाहारी व्यक्ति पर ? प्रजा की सहमति के बिना जितना चाहे उतना विराट कर्ज - बाह्य व आंतरिक - लेने का कानून या करार करना चाहिए ? ! धर्मक्षेत्र को अपने हस्तगत लेने का कानून बनाना चाहिए ? ! तीर्थों/ मंदिरों को राज्यसत्ता अपने मन मुताबिक, जब चाहे तब, जो भी कारण देकर अपने हस्तगत कर सकती है ? ! “जनहित” का लेबल लगाकर कोई भी कदम उठाना क्या मुनासिब है ?

राज्यसत्ता के अगणित विभाग, सरकारी विभाग, साल में सैंकड़ों/ हजारों की संख्या में नोटिफिकेशन्स निकालते हैं, नए कानून बनाते हैं, अध्यादेश लाते हैं। इन सारी बाबतों की खबर सामान्य प्रजाजन को होती नहीं है। फिर भी वह सारे उसके लिए बन्धनकर्ता ! पुनः, इन सबके लिए जो विस्तृत तन्त्र बनाया गया है उसे निभाने का बोझ भी सामान्य प्रजाजन पर ही! यह सारा भार वहन करके भी सामान्य प्रजाजन को सही न्याय मिलता है क्या ?

तो फिर क्या यह सब दिखावा मात्र ? किस हेतु से ?

राज्यसत्ता के लिए समस्त प्रजा मानो किसी विधवा का खेत है। इस खेत में वह उच्छृंखल साँढ की तरह सब तहस-नहस कर सकती है। उसकी नाक में नकेल डालकर उसे अंकुश में रखनेवाला न्याय का तत्त्व आज अस्तित्वहीन है। ऐसी सत्ता, राक्षसी सत्ता का उद्भव कहाँ से हुआ ? सत्ता अर्थात् क्या ? किसने किसको सत्ता दी, या ली ? सत्ता कौन भोगे ? सत्ता का स्थान और अधिकार कानून तय करता है ? या फिर सत्ता कानून को अपने अधिकार का अंग समझती है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर माँगा जाना चाहिए। न्याय जो युगों युगों से मतभेदों व विवादों का निपटारा लाने वाला तत्त्व था, वह आज स्वयं मतभेदों - विवादों में घिर गया है।

एक गैरसांविधानिक रूप से निर्मित संविधान ने अपने अंतर्गत निर्मित कानूनों को संविधानिकता बक्षी है! कैसा विरोधाभास! उन कानूनों का अनुसरण करने के लिए प्रजा बाध्य है! कैसी मजबूरी! इस स्थिति में से तार सके ऐसा एक ही तत्त्व है और वह है “विशुद्ध न्याय” का तत्त्व। कहाँ खोजें उसे ?



प्रकाशकीय टिप्पणी

भारत के संविधान की समीक्षा की बात वर्तमान सरकार ने उठाई है। उसके लिए एक समिति भी बना दी है। समीक्षा के प्रस्ताव का उग्र विरोध भी हो रहा है। भारत की स्वतंत्रता के पहले ही जब संविधान का हिन्दी मुसद्दा प्रकाशित हुआ तो उसके अध्ययन के बाद स्व. पंडित प्रभुदास बेचरदास पारेख ने उस संविधान की अनिच्छनीयता के बारे में कई लेख लिखे। उनमें से एक लेख (मूल लेख गुजराती में है, जिसका यह हिन्दी अनुवाद है) नीचे दिया गया है। ध्यान में रहे कि यह लेख १९४७-४८ के काल में लिखा गया है और उसमें व्यक्त की गई आशंकायें आज सत्य बनकर सामने आ चुकी हैं। ऐसे में राष्ट्र को यह तय करना है कि संशोधित स्वरूप में भी मात्र भौतिक आदर्शों जाला यह संविधान चालु रहे या इसे पूर्णतया रद्द, करके उसके स्थान पर आध्यात्मिक ध्येय वाला, धर्म - प्रधान, धर्म-नियंत्रित, हमारे शास्त्रों, पुराणों, वेदों, स्मृतियों, श्रुतियों आधारित नये संविधान का गठन हो ?

न्याय की पुकार

हे देव!

मैं किसके आगे शिकायत करूँ? मेरा किस किस कोर्ट में दाखिल करूँ? जगह-जगह पर न्याय की अदालतें बैठी हैं। राज्यों में उच्च न्यायालय है, दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय है। इंग्लैंड में प्रिवी काउंसिल है। जगत के मध्य चौक में न्याय का घंटा बजाने वाले युनाइटेड नेशन्स के डंके बज रहे हैं।

क्या ये सभी न्याय की अदालतें हैं? या फिर मात्र कानून की अदालतें हैं? इस बारे में मुझे पूरी जानकारी नहीं है। कहलाती तो है ये न्याय की अदालतें और उसके संचालक भी कहलाते तो हैं न्यायाधीश।

परंतु वहाँ तक कैसे पहुंचा जाये? बिना पैसे के वकील कौन बनेगा? इतने पैसे लाने कहाँ से? लोगों की नजरों में प्रिय होने का बल कहाँ से आये? अखबारों के तीक्ष्ण कटाक्ष सहन करने का बल भी कहाँ से लाया जाये? नष्ट हो चुके तथा गुप्त सबूत कहाँ से इकट्ठे किये जायें?

हे देव! कहाँ जायें? किसकी शरण लें? क्या करे? कुछ नहीं सूझता!

दिल्ली में बनाये गये भारत के नये संविधान का हिन्दी भाषा में प्रकाशित प्रारूप पढ़कर अंतरात्मा व्यथित हो उठी है।

हिन्दु, मुसलमान और चीनी प्रजायें - ये जगत की तीन महाप्रजायें जो जगत की अश्वेत प्रजाओं की अगुवा हैं। ये सभी खतरे में पड़ गयी हैं, उसका स्पष्ट प्रतिबिंब इस संविधान में दिखाई देता है। उनकी संस्कृति, उनके धर्म, उसके व्यवसाय, उनके अपने - अपने देशों की जमीनों के साथ संबंध और कुल मिलाकर एक विशिष्ट प्रजा के व्यक्तित्व के रूप में दीर्घकाल तक अस्तित्व में रहने की शक्ति भी खतरे में पड़ गयी हो ऐसा भास होता है।

समानता, न्याय, स्वतंत्रता इत्यादि जैसे शब्द मात्र भ्रम फैलाने वाले तथा उल्टी राह पर ले जाकर प्रजाओं के लिए खतरनाक साबित होने का भी भास होता है।

तथाकथित समानताओं में अलग तरह की कई विषमतायें बुनी गयी हैं। अल्पसंख्यकों के विशेषाधिकार और उनकी अबाधितता समानता के तत्त्व का हास करती हैं। जगत की श्वेत प्रजाओं के जिन लोगों को इस देश

में आने के बाद नागरिकता के अधिकार मिलेंगे (और इस उद्देश्य से “ अल्पसंख्यकों) के हकों की रक्षा हो) क्या यह विषमता नहीं है ?

आंतरराष्ट्रीय आदर्शों - उद्देश्यों के अनुकूल कानून व न्याय व्यवस्था गठित हुई है। स्पर्धा में आंतरराष्ट्रीय तत्त्व ही आगे रहेंगे और न्याय उनके पक्ष में सरकता जायेगा यह स्वाभाविक है। इनामों के घोषणा तो सभी के लिये होती है, किन्तु जो शक्ति - संपन्न हो उसी को इनाम मिलता है।

शक्ति संपन्न व अशक्त के बीच स्पर्धा के आयोजन में ही अन्याय है।

अब से आंतरराष्ट्रीय मापदंड से मानव जीवन यापन में श्रेत प्रजा ही आगे आयेगी यह स्वाभाविक है। स्थानीय प्रजायें स्थानीय तरीके से प्रगति अवश्य कर सकती है, किंतु जिन तरीकों से वे अनभिज्ञ हैं उन तरीकों से तो आगे नहीं ही आ सकती, यह भी उतना ही स्वाभाविक है। कोई अपवाद स्वरूप उदाहरण तो मात्र भ्रमण ही पैदा करते हैं और आदर्श - भेदों वाली आंतरराष्ट्रीय संस्कृति के मृगजल के पीछे स्थानीय प्रजायें दौड़ाई जा रही है, जो अन्ततः स्पर्धा में हार जाती है।

देश, जमीनें, व्यवसाय, उद्योग, धर्म, जाति, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक संपत्ति जो अलग - अलग देश की और उसकी प्रजा की मान्य हों, उसके अनुरूप हो, उसी स्वरूप में उसे मदद की जाये, यही न्याय है। उसके स्थान पर इन सभी तत्त्वों को पूरी मानवजाति के लिये एक समान बनाकर, विविध देशों की प्रजाओं के अपने स्वतंत्र हकों से विहीन करना, उन्हें अनावश्यक स्पर्धा में जोतना और स्पर्धा के नियम भी आंतरराष्ट्रीय रखना - यह सब स्पष्ट रूप से श्रेत प्रजाओं को इस देश का निवासी बना देने के लिए है। संपत्ति, समृद्धि को नयी शिक्षा, कुशलता और प्रभाव के बल से उन्हीं के हाथों में चले जाने देना और इसी को समानता व न्याय की संज्ञा देना कितना आश्चर्यजनक है? जब तक उनका अपना स्थान सुदृढ़ नहीं हो जाता, तब तक उनको अल्पसंख्यकों के तौर पर स्वतंत्र हक देना, यह मूल रूप से ही किस तरह न्यायपूर्ण है ?

हाँ, अल्पसंख्यकों के विशेषाधिकार फिलहाल कई अन्य अल्पसंख्यकों की श्रेणी को दिये जाते हैं। किंतु यह तो एक भ्रमण मात्र है। उसका असली लाभ तो श्रेत वर्णीय अल्पसंख्यकों को अंततः मिले यही व्यवस्था है, क्योंकि साधन संपत्ति पर नियंत्रण उनका है, इसका उपयोग करने की कुशलता उनकी है। इसलिये अंतिम लाभ वे ही ले जायेंगे यह स्वाभाविक है।

वनवासियों, पिछड़े वर्गों, आदिवासियों तथा अन्य विदेशी (अश्रेत) जातियों के अल्पसंख्यकों के हकों की रक्षा की जो व्यवस्था की गई है, वह भी दिखावटी ही है।

उनके हितों की दुहाई देकर इस देश की कर्तव्यनिष्ठ और प्रगतिशील प्रजाओं और जातियों को उनके नाम पर दबाने की, उनके हाथ से संपत्ति, सत्ता वगैरह छीन लेने की ये व्यवस्थायें एक राजमार्ग समान बनती जायेंगी ऐसी विशेष संभावनायें हैं। राजाओं, धर्मगुरुओं, शेठ - साहुकारों, जागीरदारों उच्च जाति के प्रजाजनों के समाने इसी देश के एक समूह को विरोधी या प्रतिपक्षी के रूप में तैनात कर दिया गया है।

अंततः तो उनकी भी रक्षा नहीं होगी। जब गौरांग प्रजायें हिन्दुस्तान में बस जायेंगी और उनका संपूर्ण “स्वराज्य” हो जायेगा तब आदिवासियों और वनवासियों या दलितों की क्या दशा होगी यह भी विचारणीय है। हजारों वर्षों से वे यहाँ के मूल स्थानीय व सामाजिक तंत्र में अपना अस्तित्व टिका पाये हैं। परंतु इस नये संविधान के बाद तो शायद ही आने वाली कुछ सदियों तक वे टिक पायेंगे। आज की अल्पसंख्यकों के विशेष अधिकारों की व्यवस्था तो मात्र लालच है।

भारत की उच्च जातियाँ इतनी संस्कृतिबद्ध, शिक्षित तथा साधन-संपन्न होते हुए भी इस नये संविधान से खतरे में पड़ गई है, तो फिर इन बिचारी पिछड़ी जातियों की तो विसात ही क्या है?

सभी सत्ताओं तथा संपत्तियों और इनके मूल स्रोतों पर नियंत्रण प्राप्त कर लेने के बाद विश्व के अन्य देशों की मूल प्रजाओं के जो हाल-हवाल हुए हैं, वे इस देश की प्रजा के नहीं होंगे इसकी प्रतिबद्धता कौन दे पायेगा? न्याय कहां रहेगा? “धार्मिक स्वतंत्रता” वगैरह भी शब्दों की भूल-भूलैय्या है। धर्म का अर्थ है आध्यात्मिक ध्येय। उनको छोड़कर सारा संविधान भौतिक ध्येयों पर ही रचा गया है।

किसी एक धर्म का अनुसरण करके राज्यतंत्र नहीं रचा जा सकता, यह सही है। किंतु आध्यात्मिक ध्येयों का अनुसरण कर राज्यतंत्र या प्रजातंत्र रचा जाना चाहिये। उसके स्थान पर भौतिक ध्येयों का अनुसरण करके राज्यतंत्र नहीं, अपितु प्रजातंत्र रचा गया है।

प्रजा का जाहिर जीवन न्याय, कानून वगैरह आध्यात्मिक ध्येयों का अनुसरण करता था इसलिये स्वाभाविक रूप से धर्म भी स्वतंत्र/निर्बंध रह सकता था और प्रजा का जाहिर जीवन ही न्याय और कानून व्यवस्था का मापदंड भी था। उसके बदले अब जब धर्म की स्वतंत्रता के उपर जाहिर नीति, कानून, आरोग्य और तथाकथित सुधरे हुए देशों के न्याय का अंकुश रखा गया है तो धर्म स्वतंत्र कैसे रह सकता है? ईसाई धर्म प्रचार को परोक्ष रूप से पूरा वेग मिले और यहाँ के मूल धर्म संकुचित होते जायें इसलिये जाहिर नीति, कानून, आरोग्य वगैरह मर्यादायें धार्मिक सहिष्णुता के नाम पर डाली गयी है।

इन सभी बंधनों के बावजूद समाधान का मार्ग अपनाकर जब तक और जहाँ तक अपने-अपने धर्म की मान्यताओं को वफादार रहने की लोगों की भावना हो तब तक व्यक्तिगत जीवन में लोग भले ही अपने धर्म का अनुसरण करें। इतनी सी सुविधा मात्र के अलावा धार्मिक स्वतंत्रता की बात में अन्य कोई वजूद नहीं है।

इतना ही नहीं, भारतीय धर्मों से भविष्य का जनसमाज किस तरह से विमुख हो इस बात को वेग मिले ऐसी भी व्यवस्थायें इस संविधान में हैं।

भारत की प्रजा धर्म की स्वतंत्रता चाहने वाली है। इसलिये उसे संतुष्ट रखने के लिये, धर्म और जातीय वैमनस्य, मतभेद और संघर्षों के कृत्रिम भय को आगे करके उस पर अलग-अलग अंकुश रखने के साथ-साथ “धार्मिक स्वतंत्रता” का शब्द छल भी किया जा रहा है। ब्रिटिश अधिकारियों ने भी ऐसा ही किया था। उसी का अनुसरण दूसरे स्वरूप में किया गया है। भारत के लोगों को भ्रमणा में डालने मात्र के लिये “धार्मिक स्वतंत्रता” शब्दों का उपयोग है। किसी बालक के हाथ में असली फल के बजाय फल का खिलौना दिया जाये और वह उसे मुँह में डालकर चुप रहे, उस तरह से “स्वतंत्रता” शब्द का उपयोग किया गया है।

विश्व शांति के बारे में भी ऐसी ही व्यवस्था है। पूरे विश्व में श्वेत प्रजा का प्रभुत्व स्थायी हो जाये, वे ज्यादा से ज्यादा संख्या में सारे विश्व में और अश्वेत प्रजाओं के देशों में बस जायें, भविष्य में उन देशों में उनकी प्रजाओं की वृद्धि होकर वे बहुमत में आ जायें तब उन सभी देशों में उनका “स्व” राज प्राप्त हो जायेगा। इस ध्येय की सिद्धि के लिये प्राथमिक चरणों में निष्णातों के रूप में, निर्वासितों के रूप में, पूंजीपतियों के रूप में, उद्योगपतियों के रूप में, आंतरराष्ट्रीय युद्धों के समय मार्गदर्शक वैज्ञानिकों, कुशल कार्यकर्ताओं तथा सलाहकारों के रूप में सभी जगह बसेंगे, उन देशों के नागरिक भी बन जायेंगे तथा कृषि व व्यापार के संचालन में मुख्य सलाहकार भी बनेंगे। इन सबके दौरान उनके भविष्य के हितों के लिये जो बहुत बड़े पैमाने पर उथल-पुथल होनी है, लड़ाईयाँ होनी हैं और उनके द्वारा स्थानीय प्रजाओं में बड़े-बड़े परिवर्तन करने हैं, उनके हो जाने के बाद जिस विश्वशांति

की कल्पना आधुनिक आंतरराष्ट्रीय नेताओं ने की है उसकी स्थापना होगी। वैसी विश्वशांति का प्रचार कई आंतरराष्ट्रीय नेताओं द्वारा हो रहा है। उसमें जगत के शिक्षित माने जाने वाले वर्ग का साथ लिया जा रहा है। जगत को भ्रम में डालने के लिये भारत जैसे शांति के पैगंबर देश का सहकार प्राप्त करने के लिए जनवरी सन् १९४९ में शांति निकेतन में आंतरराष्ट्रीय परिषद आयोजित करने की भी कार्यवाही चल रही है।

यह सभी विश्वशांति के सही मार्ग से च्युत करके, विशेषकर रंगभेद के घर्षण द्वारा मानवजाति को भुलावे में डालकर, तथाकथित विश्वशांति के सूत्र भी गौरांग प्रजा के ही हाथों में सौंप दिये जाये, ऐसी तरकीब की गई है। इस प्रकार की विश्वशांति के पीछे दौड़ने की, इस देश की प्रजा को दौड़ाने की और इसके साथ-साथ एशिया की अन्य रंगीन प्रजाओं को भी दौड़ाने का व्यवस्था इस संविधान में देखने में आती है।

संविधान के उद्देश्य नेहरूजी के जिस प्रस्ताव में जाहिर किये गये उसमें “सच्ची विश्वशांति की स्थापना में भारत विश्व की सहायता ले” ऐसे शब्द नहीं हैं, बल्कि “विश्वशांति में सहायता करें” इस आशय के शब्द हैं।

ये समानता - न्याय - स्वतंत्रता और विश्वशांति के शब्द भी कितने छलनामय तरीके से संजोये गये हैं? इसका ख्याल बहुत सरलता से नहीं आता। एक जाति, एक धर्म, एक वेशभूषा, एक भाषा, एक सी शिक्षा, एक राज्यतंत्र, एक बैंक, एक सेना, एक प्रजा वगैरह शब्द आंतरराष्ट्रीय नेता प्रचार में रख रहे हैं। उसके पीछे कौन से ध्येय, कौन से आदर्श हैं? तथा उनका परिणाम मात्र श्वेत प्रजा के हित में ही कैसे हैं? इसके विषय में तो एक स्वतंत्र लेख लिखा जा सकता है। इन सभी तत्त्वों को परोक्ष रूप से इस संविधान में इसी प्रजा के एक ऐसे वर्ग के द्वारा शामिल करवा लिया गया है जिसे विदेशी आदर्श की शिक्षा देकर तैयार किया गया था। इस तरह भारत की प्रजा को अन्याय करने का कितना बड़ा षडयंत्र किया गया है? इसका न्याय किससे मांगा जाये?

दो सौ वर्षों तक किया गया शासन, इकट्ठी की गई जानकारियाँ, भारत के नाम पर चलाये गये आदर्श, उन आदर्शों के प्रचार की संस्थाएँ, सभायें, काउंसिलें, विधान सभायें, संविधान सभायें, कानून वगैरह - वगैरह न्याय के वास्तविक मापदंड से कितने कोसों दूर हैं? इसका विचार करके हृदय कंपित हो जाता है।

किंतु क्षणिक प्रजाहित की लालच, खोखले आदर्श, बाह्य आडम्बर, भुलावे में डालने वाले वचन, गुप्त और स्वार्थ भरी किंतु बाहर से निष्कपट दिखाई देने वाली विदेशी सहानुभूतियाँ और सहकार से चकाचौंध हो चुके हमारे देशबांधव जो कानूनविद होते हुए भी राजनैतिक दृष्टिबिंदु से अनभिज्ञ होने के कारण इस भूल-भुलैया में खींचे चले जा रहे हैं और प्रजा को भी ढकेले चले जा रहे हैं।

हे देव! हम कहाँ जाकर अपनी दुहाई दें? इस संविधान के बारे में कहा जा रहा है कि यह सुधरे हुए राज्यतंत्र का संविधान है। किंतु यह संविधान मात्र राज्यतंत्र तक सीमित संविधान नहीं है। समग्र प्रजा को और प्रजा के समग्र अंगों को आधुनिक आंतरराष्ट्रीय स्वार्थों की पट्टी पर चढ़ा देने वाला, प्रजा के जीवन के सभी पहलुओं के प्रभावित करने वाला यह संविधान है। उसमें कई बातें स्पष्ट शब्दों में हैं, कई बातें गूढ़ शब्दों में हैं, कितनी ही बातें अभी मात्र प्रतीक स्वरूप में हैं। सरकारी रेकॉर्ड तथा अन्य कानूनों से ये सूचित बातें आने वाले समय में अपने आप स्पष्ट हो ही जायेंगी और उन विषयों पर प्रजा में इस समय असंतोष न पैदा हो जाये इसलिये प्रतीकात्मक शब्दों से ही काम चलाया गया है।

इस तरह से भी यह संविधान प्रजा को भुलावे में डालता है। कई लोग मानते हैं कि राज्यतंत्र का संविधान है, जबकि उसे बनाने वाले देशी संविधान - कर्ताओं के द्वारा आंतरराष्ट्रीय राजनयिकों ने समग्र प्रजाजीवन को समाविष्ट कर लेने वाला व अपने ध्येयों और आदर्शों के अनुसरण वाला संविधान बनवा लिया है। “सार्वभौम, स्वतंत्र, प्रजाकीय राज्य संविधान” वगैरह शब्द तो मात्र छलावा है।

यह तो मात्र सामान्य ध्यान आकर्षित किया है। प्रत्येक अनुच्छेद का विश्लेषण करके उपर की सभी बातें समझायी जा सकती हैं।

हे देव!

जिस संविधान ने करोड़ों वर्षों से हमारी प्रजा की रक्षा की वह संविधान के लागू होने पर निरस्त होता है।

हमारे धर्म, हमारी संपत्तियाँ, संस्कृति, समाज व्यवस्था, समग्र जीवन व्यवहार और एक विशिष्ट प्रजा के रूप में जगत में भविष्य में हमारा उ स्तित्व - ये तमाम निरस्त होता है।

हमारे ही इस देश में विश्व की दूसरी प्रजाओं का हमारे जितनी ही हक प्रस्थापित होका है और उनके आदर्शों, धर्म, संस्कृति, संपत्ति, न्याय, कानून, भाषा, सत्ता, बल, आदि को पूरा वेग प्राप्त होने का मार्ग खुलता है।

और ये सब हो रहा है उदारता, सहिष्णुता, एकता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय, समानता, विश्वशांति के नाम पर! ये सभी सिद्धांत हमें भी अभीष्ट हैं, किन्तु छलावे के रूप में नहीं।

हमारे पीछे करोड़ों अश्वेत प्रजाजनों का विश्वास समाहित है।

जगत का सही अर्थ में भला होता हो तो चाहे हमारा सब कुछ चला जाये, जगत भले ही सुखी हो, परंतु ऐसी रचना में तो जगत का वास्तविक श्रेय नहीं है, जगत का अंततः सुख नहीं है।

यह पुकार, हे देव! हम किसके आगे करें ?

धर्म गुरुओं के कानों तक यह पुकार नहीं पहुंच रहा है। पोप तो इस आंतरराष्ट्रीय षंडयंत्र में शामिल प्रतीत होते हैं। चीन अपने आंतरिक झगड़ों में फंसा है और बाहर से कर्ज के बोझ तले दबने की तैयारी में होगा। जापान आधुनिक विज्ञान का स्वाद चखते हुए उसी का भोग बन गया है। इस्लामी राज्य और तुर्किस्तान तो पहले से फंसे हुए हैं। भारत के मुसलमान भी पाकिस्तान की लालच से दो भागों में बँट चुके हैं। भारत की हिन्दु प्रजा की भी यही दशा है।

को न वि शरणम् ?

गांधीजी गये, नेहरूजी इंग्लैंड के प्रधानमंत्री एटली साहब की दाक्षिण्यता और मिठास से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। सरदार साहब और बाबू राजेन्द्र प्रसादजी की शक्ति अन्य कार्यों के लिये सुयोग्य होगी किंतु इस काम की ओर उनका ध्यान जाये ऐसा लगता नहीं है।

मावलंकर दादा बिचारे लोकतंत्र की जाल में खुद बुन गये हैं और जब तक सच्चे लोकतंत्र की जानकारी उन्हें मिले तब तक तो सब खत्म हो जायेगा। लूट जाने के बाद नींद खुलने जैसा होगा। बेरिस्टर आंबेडकर और क.मा. मुंशी तो प्रखर वकील हैं, इसलिये उनसे तो आशा ही क्या की जाये ?

इस तरह से हे देव! जगत की समस्त अश्वेत प्रजायें चारों तरफ से शरणहीन बन चुकी हैं।

किससे न्याय मांगा जाये ?

इस संविधान के पीछे कुंडली मारकर बैठे हुए २००-२५० वर्ष के अन्याय का निर्मूलन कैसे किया जाय ?

- पं. प्रभुदास बेचरदास पारेख



आज के 'स्वराज्य' का सच्चा स्वरूप

स्वराज्य प्राप्त करने के लिये भारत के अनेक सपूतों द्वारा आत्मसमर्पण कर खुद का बलिदान देने का इतिहास काफी पुराना है। १८५७ के विप्लव के बाद विदेशी शासकों को इस देश से भगाने के लिये मातृभूमि के अनेक भक्तों ने हंसते-हंसते अपना बलिदान देकर इस देश के आत्मभोग के इतिहास को ज्वलंत रखा है।

पर जैसे-जैसे स्वराज्य की मांग बढ़ती गई, वैसे वैसे विदेशी शासक ज्यादा और ज्यादा आनंदित होते गये। क्योंकि लोगों में उत्पन्न हुई इस तमन्ना को एक इच्छित दिशा में मोड़ने में वे सफल हुए थे। जैसे-जैसे क्रांतिकारी लोग जोर करते गये, वैसे-वैसे अंग्रेज मुत्सद्दी ज्यादा से ज्यादा सफल होते गये।

भारतीय प्रजा स्वयं की निर्दिष्ट जिस राह पर चल रही थी, उसी राह पर राज्य चलाने का वचन देकर उस समय के प्रजा के आगेवानों की चाह ब्रिटिशरों ने प्राप्त कर ली थी। अंग्रेज केवल राज्य करने, या व्यापार करने, या सिर्फ धन कमाने, या धर्म फैलाने के लिए ही इस देश में नहीं आये थे। परंतु 'उपनिवेश' अर्थात् गोरी प्रजा के स्थाई निवास के लिए सानुकूल स्थान स्थापित करने आये थे। उस समय बहुत से क्रांतिकारी परदेशी राज्य को हटा कर, स्वतंत्र हो कर देशी राज्य स्थापित करने के लिए संघर्षरत थे और इस प्रकार खुद की लुप्त होती हुई जीवन व्यवस्था पुनः प्राप्त कर के स्वतंत्र होना चाहते थे। ब्रिटिश मुत्सद्दी स्वतंत्र होने की हमारी ईच्छा को अध्यापकों के माध्यम से स्कूलों और कॉलेजों में प्रोत्साहित कर रहे थे। इतना ही नहीं, पर लोग जैसे बने वैसे स्वतंत्र होने की पुकार उठाये यह देखने के लिये वे आतुर थे। उसी समय धीरे-धीरे 'स्वतंत्रता' की व्याख्या बदलने की शुरुआत भी इन मुत्सद्दीओं ने कर दी थी। उपनिवेशवादी जीवन-व्यवहार को 'स्वतंत्रता' बताकर उसका प्रचार जोर-शोर से करने लगे। स्वयं तो प्रजा की मूल राह पर चलने का वचन दें चुके थे, इसलिए देशी राज्यों और खास कर उनके मंत्रीओं द्वारा ऐसी स्वतंत्रता के सामने दमन शुरु करवाया। ऐसा दमन कराने के लिए देशी राज्यों को बहुत सी छुटछाट दी और उनके राज्य में थोड़ी भी दखलअंदाजी न करने का, अर्थात् उनके और उनकी प्रजा के बीच के घर्षण में राजाओं को मदद देने का वचन देकर देशी राज्यों में इस हलचल के सामने दमन बढ़ाने के लिये चाहिये उतनी सहूलियत कर दी।

अपनी हुकुमत तले के प्रदेशों में बाहरी रूप से इस हलचल का विरोध दर्शाकर, उस हलचल के बहुत से विभाग कराकर, अलग-अलग मंडलों-संस्थाओं की स्थापना की तरफ मोड़ दिया। फलस्वरूप स्वतंत्रता, स्वराज्य जैसे शब्द ज्यादा से ज्यादा गुंजने लगे। उसमें उपनिवेशवादी ध्येय के आदर्श जुड़ते गये। वह इस हद तक कि "मूलभूत स्थिति को टिकाने के लिए स्वतंत्रता और स्वराज्य के प्रयास थे" यह तथ्य धीरे-धीरे गौण होता गया और भुला दिया गया। तदुपरांत अलग-अलग देशनेताओं के द्वारा 'स्वराज्य' की अलग अलग परिभाषा कराकर उस प्रकार के आदर्श सम्मिलित कराते चले गये।

सन् १९१४ के बाद इस कार्यक्रम में गति आई। तब तक स्वराज्य की परिभाषा पूरी तरह से बदल गई थी। उस परिभाषा के आधार पर गोलमेज परिषद के समय स्वराज्य की माँग करनेवाला एक संपूर्ण अलग ही वर्ग खड़ा हुआ, उसी समय हमको हल्का सा ख्याल आ गया कि इसके पीछे कोई चाल खेली गई है। एक वर्ग को स्वराज्य चाहिए था और वह भी उपनिवेशवादी स्वराज्य की परिभाषा से रंगा हुआ। दूसरे वर्ग को स्वराज्य नहीं चाहिए था ऐसा नहीं था, किंतु उनको स्वराज्य चाहिए था हकदार की तरह, और वह भी मात्र स्वयं के हक अबाधित-रूप से संरक्षित रहे उस तरीके से। उनकी स्वराज्य की व्याख्या मात्र स्थानिक स्वराज्य की थी। परंतु उपनिवेशवादी स्वराज्य, अर्थात् क्या? यह तो ऊपर कहा जा चुका है। इस तरह एक ही चीज की दोनों वर्गों के

पास माँग करा कर, स्वयं खड़े किए हुए वर्ग को उपरी दिखावा कर कम महत्त्व देते गये। परिणाम स्वरूप मूलभूत वर्ग ज्यादा महत्त्व वाला माना गया। इस तरह दोनों वर्गों को स्वराज्य की भेंट दे कर अंग्रेज यहाँ से विदा हुए। पर वास्तविक रूप से देखा जाए तो मात्र यहाँ से दूर जा बैठे, और उपनिवेशवादी स्वराज्य की तमाम योजना पर 'स्वराज्य' का लेबल लगा कर हमारे हाथ में तंत्र की कमान सौंप दी।

हमने यह समझा कि हमने दिये हुए बलिदानों और भोग के फलस्वरूप, हमारी मेहनत से हमने स्वराज्य प्राप्त किया। नये वर्ग को तो जो भी मिला वह फायदे में होने से वह भी खुश हुआ, और दोनों की मान्यता कायम रख कर, अंग्रेजों ने स्वयं निश्चित किये हुए मार्ग पर दोनों वर्गों को चढ़ा कर उपनिवेशवादी स्वराज्य को मजबूत करने के उपाय हमारे ही हाथों करवा लेने का तख्ता सजा लिया। हम खुश हुए, कारण कि हमें स्वराज्य मिला। नये हकदार भी इसी मान्यता के आधार पर खुश हुए और अंग्रेज भी खुश हुए। उनकी मंशा हिंदुस्तान को उपनिवेशवादी अर्थात् गोरी प्रजा के रहने की सुविधा वाला देश बनाने की थी, वह वास्तव में १५-८-१९४७ को पूरी हुई।

इस तरीके से जो महत्ता भारत की 'प्रजा' की थी, वह भुला कर भारत 'देश' की महत्ता बढ़ा दी गई। अर्थात् भारत जो आध्यात्मिकवाद के धरातल पर खड़ा था, वह अब भौतिकवाद में विश्वास करने वाला हो गया। हिंद देश की भूमि, उसके विपुल साधन, कुदरती खजानों इत्यादि की महत्ता खूब गाकर हिंद की प्रजा के महान सिद्धांतों, हिंद की प्रजा की भव्यता, उदारता इत्यादि तमाम भुला दिया गया। इस तरीके से हिंद की प्रजा के महत्त्व की बली चढ़ाकर हिंद की भूमि और उसके विपुल साधनों को ऊंचाई पर चढ़ा कर, उनमें और भी हो सके उतना सुधार कर खुद के ही उपयोग में उसका लाभ ले सकें, इस तरीके का 'स्वराज्य' ब्रिटिशों ने हमको दिया है, और हमने आंतरिक प्रशासन की स्वतंत्रता के मोहजाल में चकाचौंध होकर, जो स्वराज्य स्वीकार किया है, वह उपनिवेशवादी स्वराज्य ही आज का स्वराज्य है।

इस तरह से भारत को उपनिवेशवादी स्वराज्य की दिशा में मोड़ने के लिए अंग्रेजों ने ३५० वर्ष यहाँ बिताये। प्रजा के वास्तविक स्वराज्य के मूलभूत पांच तत्त्वों में से प्रत्येक तत्त्व को एक के बाद एक ऊंचाई पर चढ़ा कर वापस धीरे धीरे नीचे पटक कर लगभग खत्म कर दिया। वे पांच तत्त्व थे:- १) धर्मगुरु, २) राजा, ३) महाजन, ४) ज्ञातियाँ तथा ५) धंधादारी जातिबाँ। आज हम देख सकते हैं कि प्रजा के इन सभी मूलभूत तत्त्वों की क्या दशा है? धर्मगुरुओं को एक किनारे कर, उनको मात्र बोध देनेवाले भिक्षुओं की स्थिति के मानवी मान कर धर्म से संबंधित कायदे कानूनों में से ऐसी युक्ति से हटा दिया है कि आज प्रजा और सरकार के बीच के कायदे कानूनों में इस वर्ग की हस्ती ही नहीं है। राजा भी अब अस्तित्व में नहीं है। महाजन नाम-मात्र को रह गये हैं। उनकी अथाग सेवा और प्रजा की सेवा के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाला पूज्यभाव तो आज कहीं दिखता ही नहीं है। "ज्ञातियाँ एक प्रकार का बंधन है और वे देश को नुकसान करनेवाली हैं, अतः ज्ञातियाँ खत्म कर देनी चाहिए" ऐसा मानने वाले एक वर्ग ने ज्ञातियों को दूर कर काँग्रेस- प्रांतिक समिति इत्यादि के बंधन खड़े कर पुराने ज्ञातिबंधनों को तोड़ दिया है। आज जबकि काँग्रेस बहुमति के सिद्धांत पर रची गई है और मात्र अपनी बहुमति के बल पर मन चाहे जैसा कर, जिस प्रकार की अंधी दौड़ से आगे बढ़ रही है, वह ज्ञातियों से भी ज्यादा खतरनाक साबित हुआ है।

धंधादारी जातियाँ! धंधों या व्यवसायों के आधार पर बनाई हुयी जातियों के बदले अंग्रेजी ढंग से रचित एसोसिएशनों को तैयार कर, अंग्रेजी रीत-रसम के कायदे स्वीकार कर, हमारे तमाम व्यापार, पहले की कारीगरी के धंधे, रोजगार वगैरह पर परदेशीओं का वर्चस्व स्थापित कर दिया है। इस तरीके से हमारी जन-जन

की रक्षक संस्कृति और व्यवस्था को तोड़ कर, उनकी जगह उपनिवेशवादी रीत-रस्में घुसाई गई हैं। इससे जब भी गोरी प्रजा को भारत में पुनः बसना हो, तब उनकी रीत से सब कुछ यहाँ तैयार मिले।

सब जानते हैं कि दरियापार के ब्रिटिश उपनिवेशों के समूहरूप 'कोमनवेल्थ' में भारत के प्रधानमंत्री को समझाकर भारत को उसमें सम्मिलित कर लिया गया है, और इस तरीके से भारत इंग्लैंड का संस्थान है, यह सुनिश्चित करा लिया गया है। इस रीत से भारत भले ही उसके आंतरिक प्रशासन में स्वतंत्र है ऐसा मान लें, तो भी उपनिवेशवादी स्वराज्य प्राप्त कर हम दूसरे तरीके से ज्यादा ही परतंत्र हुए हैं।

उपर बताया वैसे भारत की भूमि को (देश को-प्रजा को नहीं) उन्नत करने - ज्यादा लाभदायी बनाने की सिफारिश कर के परदेशी पैसा करोड़ों-अरबों में भारत को दिया गया। बड़ी बड़ी नहरों की योजनाएं अमल में लाई गईं। खेती के लिए उपयोगी हों ऐसे केमिकल कारखाने डालने की तैयारियाँ करायी। इसमें से थोड़ा-बहुत वे स्वयं ही शुरु कर गये थे। बाकी का हमारे द्वारा तैयार कराया। और उस दिशा में प्रेरित होकर हम ऐसी योजनाएं जोर-शोर से अमल में लायें इसलिए भारत को खाद्यान्न की कमीवाला देश दिन ब दिन बनाते गये। आज खाद्यान्न का प्रश्न हमें जिस तरह से सता रहा है, यह देखते हुए 'ग्रो मोर फुड' और एसी अनेक स्कीमों को अमल में लाने और नहरों के निर्माणकार्य वगैरह शीघ्र करने के लिए हम तनतोड़ महेनत कर रहे हैं, यही उनकी सिद्धी है। जब जमीन के ऐसे विकास (जो उनके लिए फलदायी होना है), की तरफ हमें घसीटा जा सकता है, तो इस तरह का स्वराज्य देना किसको अच्छा नहीं लगेगा ? पर हमारी प्रजा के आदर्श, जीवन प्रणालिका उपनिवेशवादी नीति से काफी भिन्न है। दोनों परस्पर विपरीत दिशा में हैं, और इसलिए ही आज का राजतंत्र लोगों को अनुकूल नहीं है। जिसके परिणाम स्वरूप ही इतना सारा असंतोष व्याप्त है और यह प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

आज के हमारे नेता हमें कहते हैं कि, "अगर सुखी होना हो तो स्थितिचुस्तता छोड़ दो।"

उसके सामने प्रजा का यह प्रश्न यह है कि, "थोड़े से सुख के लिए स्थितिचुस्तता छोड़ेंगे तो थोड़े वर्षों तक स्वतंत्र रहेंगे, परंतु आखिरकार जब उपनिवेशवादी नीति शिखर पर होगी, तब सर्वथा नाश से कैसे बच पायेंगे?"

इस तरीके से आज जिस 'स्वराज्य' का हम उपभोग कर रहे हैं वह हमारी स्वतंत्रता नहीं है, बल्कि उपनिवेशवादी नीति की योजनाओं पर 'स्वराज्य' का लेबल लगा हुआ संस्थानिक स्वराज्य है।

- पंडित प्रभुदास बेचरदास पारेख

(जून १९५१ के दिव्य प्रकाश में प्रकाशित मूल गुजराती लेख का हिंदी अनुवाद)

※ ※ ※

भारतीय प्रजा की स्वतंत्रता या परतंत्रता?

भ्रम तोड़ो, सत्य पहचानो!

प्रजा के अलावा बहुत से भारतीय विद्वान भी ऐसा ही समझते हैं कि,

- १) अंग्रेज भारत में व्यापार करने और राज्य करने के लिये आये थे।
- २) 'भारत छोड़ो' के आंदोलन से घबरा कर अंग्रेज यहाँ से चले गये थे।
- ३) भारत को स्वराज्य मिला है।

उपरोक्त समझ के अलावा भी बहुत सी ऐसी धारणाएँ केवल भ्रमणा हैं।

न तो अंग्रेज भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से व्यापार करने ही आये थे; न ही राज्य करने ही आये थे; बल्कि वे तो ईसा मसीह की आज्ञाओं के विरुद्ध जाकर वेटिकन चर्च द्वारा संपूर्ण विश्व के प्राकृतिक पदार्थों सहित सभी सचराचर पदार्थों पर स्वयंभू मानी हुई मालिकी को व्यवहारिक स्वरूप देने आये थे। भारतीय प्रजा के समग्र जीवन को वेटिकन चर्च की आज्ञा तले लाने के लिए आये थे और क्रमबद्ध तरीके से उस योजना का अमल हो ऐसी व्यवस्था करने आये थे। अंग्रेजों को यह अधिकार पुर्तगाल की तरफ से मिला था और पुर्तगाल को ऐसा अधिकार वेटिकन चर्च द्वारा १४९३ में जारी किये गये दस्तावेज द्वारा मिला था।

तदनुसार;

- (१) सन् १४९८ में वास्को डी गामा का भारत में आना, उस योजना के भाग स्वरूप था।
- (२) सन् १६०० में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत आना, यह भी उस योजना का भाग था।
- (३) सन् १७५७ में सिराजुद्दौला को हरा कर कंपनी राज्य की स्थापना, यह भी उस योजना का भाग था।
- (४) सन् १८५७ का विद्रोह भी उस योजना का भाग था।
- (५) सन् १८५८ में ईस्ट इंडिया कंपनी का ब्रिटिश पार्लियामेंट में विसर्जन, यह भी उस योजना का भाग था।
- (६) धर्मों में हस्तक्षेप नहीं करने का ब्रिटिश सरकार का आश्वासन भी उस योजना का भाग था।
- (७) सन् १८५८ के बाद किये गये रचनात्मक कार्यों में, अंग्रेजी शिक्षा देनेवाली युनिवर्सिटीओं की स्थापना भी उस योजना का भाग था।
- (८) सन् १८८० में चुनाव का कानून, यह भी उस योजना का भाग था।
- (९) सन् १८८५ में मी. ह्युम द्वारा कांग्रेस की स्थापना भी उस योजना का भाग था।
- (१०) कांग्रेस की जनमानस में प्रतिष्ठा खड़ी करने के लिए होने वाले आयोजन भी उस योजना के भाग थे।
- (११) सन् १९११ में पंचम जॉर्ज का भारत में राज्यारोहण का प्रसंग, यह भी उस योजना का भाग था।
- (१२) सन् १९१४-१५ में मोहनदास करमचंद गांधी को दक्षिण अफ्रिका से भारत लाना, उन्हें कांग्रेस की सत्ता सौंपना व उन्हें "महात्मा गांधी" बनाना उसी योजना का भाग था।
- (१३) सन् १९१९ में फेडरल सरकार की रचना के बीज बोये गये, यह भी उस योजना का भाग था।
- (१४) सन् १९३५ का 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट', यह भी ब्रिटिश योजना का आगे का कदम था।
- (१५) सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो' आंदोलन भी इस योजना का भाग था।
- (१६) सन् १९४६ में भारत को युनो का सदस्य बनाना, यह भी इस योजना का भाग था। उसके पहले 'कोमनवेल्थ' का सदस्यत्व भी इस योजना के अंतर्गत कदम था।

- (१७) सन् १९४६ में संविधान सभा की स्थापना कर नया संविधान बनाने की प्रक्रिया की शुरुआत भी इस योजना के भाग रूप थी।
- (१८) १५ अगस्त, १९४७ के दिन भारत के दो टुकड़े कर, दी गई कथित आज़ादी, जो वास्तव में तो मात्र 'सत्ता का हस्तांतरण' था, यह भी उस योजना का भाग ही था।
- (१९) अनात्मवाद और भौतिकवाद के आदर्शों पर निर्मित नया संविधान जो कि चार पुरुषार्थ के आदर्श पर निर्मित ऋषिमुनिओं के संविधान को रद्द करने वाला था, इस देश ने १९५० में अपनाया, वह भी उस योजना के भाग स्वरूप था।

उसी तरह भारतीय प्रजा के प्रत्येक अंग में परिवर्तन की क्रमबद्ध योजनायें भी वेटिकन की सत्ता स्थापित करने की योजना के भाग स्वरूप थी। उसके बीज अकबर बादशाह के समय बोये गये थे और इसीलिए इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में अकबर बादशाह को "अकबर द ग्रेट" कहकर प्रतिष्ठित किया गया है।

उदाहरण के लिए :-

- (१) धार्मिक क्षेत्र में -
- (अ) 'दीन-ए-इलाही' धर्म की स्थापना भी उस योजना का एक भाग था।
- (आ) १८९२ की शिकागो धर्म-परिषद भी उस योजना का भाग था।
- (२) आर्थिक क्षेत्र में -
- (अ) टोडरमल द्वारा जमीन को नापना और जमीनों के पट्टे बनाना भी उस योजना के भाग रूप था।
- (आ) भारत के शराफों के विरुद्ध प्रचार यह भी उस योजना के अंतर्गत था।
- (३) सामाजिक क्षेत्र में -
- (अ) सामाजिक रिवाजों के विरुद्ध अंग्रेजी पढ़े हुए देशी विद्वानों द्वारा तिरस्कारयुक्त प्रचार भी उस योजना के अंतर्गत निहित था।
- (आ) हरिर्जन मंदिर प्रवेश का कानून भी उस योजना में समाहित था।
- (४) राजकीय क्षेत्र में -
- (अ) राजाओं और राजकुमारों के आसपास युरोपियनों की घेराबंदी, यह भी उस योजना का भाग था।
- (आ) राजाओं के साथ कूट संधियाँ भी उस योजना के भाग रूप थी।

यह एक सामान्य संक्षिप्त रूपरेखा है। प्रत्येक मुद्दे को विस्तारित कर सकते हैं। इस तरीके से वेटिकन की सत्ता स्थापित करने की व्यवहारिक व्यवस्था के लिए भारत में पुर्तगाल से प्राप्त अधिकार के तहत संस्थान की स्थापना ब्रिटेन ने की।

और आज भी ईंग्लैंड भारत को दरियापार का डोमिनियन (Dominion) मानता है। (Dominion) अर्थात् ईंग्लैंड की रानी के कब्जे तले का दरियापार का प्रदेश।

और जब तक युनो की धुंसरी भारतीय प्रजा के समग्र जीवन पर न स्थापित हो जाय तब तक भारत डोमिनियन (Dominion) के रूप में परतंत्र ही है। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने खिंची हुई रेखा की मर्यादा में ही हम स्वतंत्र है। उस रेखा के बाहर न जाने के लिये बंधे हुए है। उतने परतंत्र है। उसकी रूपरेखा भारत का नया संविधान है।

※ ※ ※

भारत को 'स्वराज' मिला ?

बनाम

वेटिकन की सत्ता का व्याप

पब्लिक ट्रस्ट ऐक्ट के एक ही कानून द्वारा भारत के सभी धर्मशासनों की धार्मिक संपत्तियों पर रातों-रात राज्यसत्ता का स्वामित्व स्थापित करके वेटिकन ने स्वयं की विश्व व्यापी सत्ता का प्रमाण दे दिया है, विश्व पर अपने स्वामित्व का प्रमाण दे दिया है।

हिन्दू कोड बिल के एक ही कानून के द्वारा हिन्दू प्रजा की सामाजिक व्यवस्था को एक ही झटके में छिन्न-भिन्न करके वेटिकन ने अपनी सत्ता के व्याप को उजागर कर दिया है।

“प्रिवेशन ऑफ क्रुएल्टिस टू एनिमल्स” नामक कानून द्वारा भारत के तमाम पशुओं पर वेटिकन ने अपना स्वामित्व प्रमाणित कर दिया है।

“विश्व के तमाम सचराचर पदार्थों पर स्वयं का स्वामित्व जाहिर करने मात्र से, स्वयं का स्वामित्व मान लेने मात्र से क्या विश्व पर स्वामित्व हो जाता है ?’ ऐसे प्रश्नकर्ताओं को मान लिया गया स्वामित्व प्रस्थापित करके भी वेटिकन ने चुप कर दिया है।

जो वेटिकन सत्ता पहले अपने हुकों का पालन ब्रिटिश सत्ता के माध्यम से कराती थी, वह वेटिकन अब 'यूनो' के माध्यम से हुकों का पालन कराती है। यूनो की स्थापना के पहले अलग-अलग यूरोपीय राष्ट्रों के द्वारा अलग-अलग देशों-प्रदेशों पर वेटिकन सत्ता अपना आधिपत्य चलाती थी। किंतु भिन्न-भिन्न देशों-प्रदेशों को एक ही सत्ता केन्द्र के अंकुश तले लाने के लिए उन प्रदेशों पर हुकूमत चलाने वाली यूरोपीय सत्ताओं का 'स्वराज' देने के बहाने विसर्जन किया गया और उन तमाम राष्ट्रों को 'यूनो' के मजबूत केन्द्र (खूँटे) के साथ जोड़ दिया गया। जिससे अलग-अलग यूरोपीय राष्ट्रों के माध्यम से सत्ता चलाने के बजाय यूनो के एक ही केन्द्र द्वारा वेटिकन सत्ता के हुकों का अमल कराया जा सके। 'स्वराज्य' देने का यह गूढ़ अर्थ है - अलग-अलग यूरोपीय राष्ट्रों के द्वारा सत्ता चलाने के बजाय एक मजबूत केन्द्र द्वारा वेटिकन की सत्ता लागू करना।

ईस्ट इंडिया कंपनी का विसर्जन ब्रिटिश सत्ता में; ब्रिटिश सत्ता का विसर्जन यूनो के केन्द्र में।

वेटिकन के 'बुल' (पोप का आदेश) की घोषणा को मजाक समझने वाले यूनो की स्थापना के पीछे के इस गूढ़ रहस्य को कभी नहीं समझेंगे। विश्वनेता जैसे भारत के महासंत भी अगर इस रहस्य को नहीं समझ पाए हैं तो औरों की तो बिसात ही क्या ? ब्रिटिश सत्ता का लक्ष्य मात्र भारत था; यूनो का लक्ष्य तो विश्व के तमाम राष्ट्र हैं। दुनिया के करीब-करीब सभी राष्ट्रों को यूनो का सदस्य बना दिया गया है। वेटिकन भी स्वतंत्र देश है किन्तु यूनो का सदस्य नहीं बना है - उसे यूनो का सदस्य नहीं बनाया गया है। यूनो की सत्ता विश्व के सभी देशों पर चलती है, किन्तु यूनो पर वेटिकन की सत्ता चलती है क्योंकि यूनो का जन्मदाता वेटिकन है और यूनो विश्व के तमाम राष्ट्रों पर वेटिकन का स्वामित्व स्थापित/फलित करने की दिशा में आगे बढ़ता जा रहा है।

※ ※ ※

धार्मिक वैश्विकरण के पहले चरण की शुरुआत

जगत के धर्माचार्य यूनो की शरण में

ता. २८ अगस्त सन् २००० से चार दिन तक यूनाइटेड नेशन्स के तत्वावधान में विश्वधर्म परिषद का आयोजन हुआ था।

सच्ची अहिंसा के पालन करने और करवाने के द्वारा विश्वभर के मानवों को सच्ची अहिंसा के यथासंभव पालन की तरफ पथ प्रदर्शित करते हुए जगत में सच्ची अहिंसा के संदेश को फैलाने की और उसके माध्यम से सच्ची विश्वशांति फैलाने की और उसे टिकाये रखने की जो जोखमदारी और जिम्मेदारी आर्य महासंतों ने उनके प्रतिनिधि स्वरूप भारत के धर्मगुरुओं - संतों पर रखी है, उस जोखमदारी और जिम्मेदारी को यूनो (पढ़िये - वेटिकन) द्वारा आयोजित विश्वधर्म परिषद में भाग लेकर और यूनो अर्थात् वेटिकन चर्च के द्वारा तैयार किये गये निवेदन पर अपने हस्ताक्षर करके भारत के कई धर्मगुरु यूनो के चरणों में भेंट चढ़ा आये और वे अब महासंतों द्वारा उनके उपर रखे गये विश्वास से - जिम्मेदारी से मुक्त हो गये!

अब यूनो नाम का हिंसक बाघ टीके-तिलक करके, धर्मगुरु का स्वांग रचाकर जगत में एसी अहिंसा का प्रचार करेगा और एसी विश्वशांति की स्थापना का प्रयास करेगा जिसके अंतर्गत जगत के सभी धर्मों का यूनो में केन्द्रीकरण होकर धर्मों का वैश्विकरण होगा; अर्थात् वेटिकन चर्च द्वारा प्रेरित एक ही धर्म जगत में फैलेगा। उसी तरह एक रंग की प्रजा के अलावा अन्य तमाम रंगों की प्रजाओं का अस्तित्व भी खतरे में पड़ेगा - उनका भी वैश्विकरण होगा।

यूनो तथा उसके भिन्न-भिन्न अंगों जैसे कि फाओ, यूनिसेफ, ह्यू, केयर, विश्व बैंक वगैरह द्वारा संपूर्ण जगत के मानवों के जीवन के अलग अलग पहलुओं का वैश्विकरण करके उन पहलुओं पर वेटिकन चर्च की सत्ता स्थापित कर लेने के सफल प्रयासों के बाद अब जगत के मानवों के धर्मों - धार्मिक जीवन का वैश्विकरण करने के लिये वेटिकन चर्च यूनो संस्था के माध्यम से आगे बढ़ रहा है। वेटिकन चर्च जगत के अन्य तमाम धर्मों के नाश के लिये स्वयं तो मैदान में नहीं आ सकता, इसलिये उसकी कठपुतली समान यूनो संस्था को वह कार्य सिद्धि के लिये मैदान में उतार रहा है और भारत के भोलेभाले धर्मगुरु उस बाघ के मुँह में अपना सिर डालने के लिये खुशी-खुशी दौड़े चले जाते हैं।

पश्चिमी यूरोपीय सत्ताओं के राज्यकर्ताओं के हाथों में खेलती यूनो संस्था ने उसके अलग अलग अंगों के द्वारा जगत में भूखमरी फैलाई है, बेकारी फैलाई है, हिंसा का तांडव रचा है, महंगाई और गरीबी फैलाई है, युद्ध कराये हैं, पर्यावरण का नाश किया है। यह संस्था अब किस मुँह से जगत में शांति की स्थापना करने, अहिंसा का संदेश फैलाने और पर्यावरण की रक्षा करने के लिये आगे आयी है ?

जगत में सच्ची अहिंसा फैलाने का, सच्ची विश्वशांति की स्थापना करने का कार्य भारत के धर्मगुरु वर्ग का है यूनो को उनके कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप करने को क्यों दौड़ आना चाहिये ? यदि उनकी नीयत सही हो तो यूनो को भारत के धर्मगुरुओं की शरण में यह कार्य करने के लिये समर्पित हो जाना चाहिये। भारत के धर्मगुरुओं को अपने चरणों में नहीं झुकाना चाहिये।

भारत के धर्मगुरुओं को यूनो की ताकत पहचान लेनी चाहिये। यूनो विश्व की महासत्ता के रूप में और जगत के तमाम राष्ट्र उसके मातहत राज्यों के रूप में परिवर्तित होते जा रहे हैं। इसलिये अपने आपको सार्वभौम राष्ट्र मानने की भ्रमणा में रमते देशों को अपने अपने संविधानों में परिवर्तन करके भी यूनो के आदेशों का पालन करना पड़ता है। मातहत राज्य चक्रवर्ती सम्राट यूनो के आदेशों के अमल का अनादर करने की हिंमत कैसे दिखा सकते हैं ? धर्म क्षेत्र में भी यूनो महासत्ता के आदेशों का ही पालन करना पड़ेगा। यूनो द्वारा आयोजित विश्वधर्म परिषद में उपस्थित रहकर जगत के धर्मगुरुओं ने वैसी स्वीकृति दे ही दी है।

जगत में सच्ची विश्वशांति तभी स्थापित होगी, सच्ची अहिंसा तभी फैलेगी, कृत्रिम गरीबी - महंगाई-बेकारी - भूखमरी - हिंसा वगैरह दूषण तभी दूर होंगे जब यूनो तथा उसकी अंग रूप संस्थाओं का जगत से विसर्जन होगा।

यूनो नाम के हिंसक बाघ को पिंजरे में बंद करने की चुनौती भारत के धर्मगुरु स्वीकार कर सकेंगे ?

※ ※ ※

समाचार

पंजाब में किसानों की आत्महत्या के लिए ट्रैक्टर जिम्मेदार

चंडीगढ़। अभी तक ऐसा माना जाता है कि देश में सर्वाधिक समृद्ध पंजाब के किसान हैं। हरितक्रांति के बाद देश में सबसे ज्यादा खाद्यान्न का उत्पादन करने वाले राज्य के किसान अब आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो रहे हैं।

कर्जदार बने किसानों के लिए अंतिम मार्ग

हरित क्रांति के बाद पंजाब के किसानों ने यांत्रिकरण को तेजी से स्वीकार किया था और इसी कारण से उनकी कठिनाइयां बढ़ी है।

राज्य सरकार की रिपोर्ट के अनुसार हाल ही में हुई आत्महत्या की घटनाओं के लिए किसानों द्वारा ट्रैक्टर खरीदने के लिए लिया गया कर्ज जिम्मेदार है। पंजाब के अनेक किसान यह कर्ज चुकाने में असमर्थ साबित होते हैं और आत्महत्या करने बाध्य हो जाते हैं।

हालांकि, सरकारी अधिकारियों का मानना है कि आत्महत्या करनेवालों की संख्या काफी अधिक है, क्योंकि किसानों द्वारा की गई आत्महत्या की अनेक घटनाएं सरकारी पुस्तिका में दर्ज ही नहीं की जाती। संसद की एक स्थाई समिति को भेजी गई रिपोर्ट के अनुसार पंजाब के किसानों

पर इस समय ९,३१४ करोड़ रु. का कर्ज है।

आत्महत्या की घटनाओं की जांच करनेवाली पंजाब कृषि यूनिवर्सिटी की एक समिति ने भी स्वीकार किया है कि कर्ज न चुका सकने के कारण किसान आत्महत्या का मार्ग अपनाते हैं।

बैंक आफ पटियाला के एक अधिकारी ने बताया की बैंक का लोन चुकाने में लोगों को काफी कठिनाई हो रही है।

संगरूर जिला में लगभग एक हजार किसानों ने कर्ज नहीं चुका सकने के कारण आत्महत्या कर ली। हालांकि, राज्य सरकार ने आत्महत्या करनेवाले किसानों के परिवार के लोगों को एक-एक लाख रु. का मुआवजा देने की घोषणा की है। (दिव्य भास्कर ता. २५-१०-२००४)

समीक्षा

कृषि क्षेत्र से अल्पहिंसक साधनों द्वारा खेती करने की आर्य व्यवस्था टूट जाने से, उनके साधन खींच लेने से बैल-बछड़ों और सांडों की अंधाधुंध कत्ल हो जाने से, इसका असर मानव हत्या तक पहुंचा है, ऐसा उपर्युक्त समाचार से प्रतीत होता है।

जो आर्य व्यवस्थाएं हिंसा के प्रचंड बाढ़ के मार्ग में अभेद्य दीवार बन कर खड़ी थी, उस आर्य व्यवस्थाओं पर आक्रमणों को मार कर हटाने के उपाय करने की निष्क्रियता ने अपने अभेद्य दिवारों को भेद दिया और इस आर्य देश में हिंसा की बाढ़ चारों तरफ आ गई। 'हिंसा बढ़ी है।' ऐसा शोर भी हिंसा की बाढ़ को रोक नहीं सका, उसे रोकने के लिए आर्य जीवन व्यवस्था की अल्प अहिंसक सुव्यवस्थाओं की रक्षा करनी पड़ेगी, रक्षा करने के उपायों को खोजना पड़ेगा, धन का प्रवाह इस दिशा में मोड़ना पड़ेगा।

अल्पहिंसक आर्य व्यवस्थाएं और उसके साधनों की रक्षा के वास्ते प्रयास के प्रति तिरस्कार की दृष्टि से देखने वाले जब भयंकर हिंसक अनार्य व्यवस्थाएं और उनके साधनों को प्रेमपूर्वक गले लगाते हैं तो आश्चर्य होता है। पशु आधारित वाहन व्यवहार की व्यवस्था और उसके पशुरूपी साधनों की रक्षा के लिए प्रयासों को तिरस्कार कर तोड़नेवाले जब अनार्य व्यवस्था द्वारा उत्पन्न

नए माडल की महंगीकार के काफिलों का आनंद लेते हैं तब उनके दंभ का पता चलता है।

अल्पहिंसक आर्य व्यवस्था की रक्षा के उपदेश में हिंसा का आरोपण करने के उपदेशक जब अनार्य जीवन व्यवस्था के महाहिंसक साधनों को अपने अनुष्ठानों में प्रेमपूर्वक स्थान देते हैं, जैसे साधन अर्थात् हिंसा की धर्म की भावना का अंग मानते हैं, तब आश्चर्य की अवधि उत्पन्न होती है। खुल्लमखुल्ला इतना दंभ! उदाहरणार्थ - धार्मिक अनुष्ठानों का आमंत्रण देनेवाली वर्तमान की एक एक आमंत्रण पत्रिका घोर हिंसा की - अनार्य व्यवस्था की - अनात्मवाद की पोषक पत्रिका है, हिंसा का साधन है।

अल्प अहिंसक आर्यजीवन व्यवस्था और उसके साधनों को नष्ट करके उसकी जगह पर हिंसक अनार्य जीवन-व्यवस्था और उसके साधनों की स्थापना इस जीवन व्यवस्था को संसार में फैलानेवाले बलों को इष्ट है, परंतु उनके ऐसे प्रयासों में जब आर्य जीवनव्यवस्था के रक्षक बल जुड़ते हैं, उनका सहयोग करते हैं या तो जैसे साधनों की अथवा उन्हें जन्म देनेवाली व्यवस्था के सामने बाधा डालने की उपेक्षा करते हैं अथवा उन्हें हर्षपूर्वक अपनाते हैं, तब वेदना की चीख उठती है। सशक्त और अधिकृत रक्षक बलों द्वारा होती उपेक्षा को अनन्त संसार भ्रमण का कारण बताया है।

विश्व धर्म परिषद

“विश्व धर्म परिषद” शब्द द्विअर्थी है। विदेशियों ने जिस अर्थ में यह शब्द प्रचलित किया है वह है - योग्यता के आधार पर नहीं, बल्कि बहुमत के आधार पर सारे विश्व का एक ही धर्म हो; और यह अर्थ स्थापित करने के लिये विश्व के अन्य सभी धर्मों के कृत्रिम प्रतिनिधियों की बनाई गई एक परिषद, जो इस विश्व धर्म का प्रचार करे। यह है “विश्व धर्म परिषद” का विस्तृत वाच्यार्थ व लक्ष्यार्थ ।

पोप के नेतृत्व में जगत की श्वेत प्रजाओं और उनके नेताओं का लक्ष्य जगत में “एक भाषा, एक वेषभूषा, एक खान-पान, रहन-सहन पद्धति, एक शिक्षा, एक कोर्ट, एक न्याय व्यवस्था, एक अर्थव्यवस्था इत्यादि करने का है। उसी के साथ साथ एक ही धर्म, एक ही ईश्वर तथा एक ही रंग (श्वेत रंग) की प्रजा रखने का भी है। इसके लिये सभी अल्पसंख्यक पक्षों को बहुमत के पक्ष में शामिल (विलीन) कर देना है; और इस तरह जगत में एक “विश्व धर्म” स्थापित करना है और इसके लिये इस परिषद का आयोजन है।

इस बात को युक्तिपूर्वक संजो कर १८९२ में शिकागो में पहली विश्व धर्म परिषद आयोजित की गई थी।

परंतु उस परिषद में भाग लेने वाले अन्य धर्मों के प्रतिनिधियों को इस कूटनीति का ख्याल उस समय नहीं आया था। पाश्चात्य लोग अन्य धर्मों के रहस्यों को जानने के लिये उन धर्मों के प्रतिनिधियों को बुलाते हैं और ‘हमारे धर्मों के बारे में विदेश के लोग सुनें, उसकी प्रशंसा करें’, इस उत्साह में हरेक धर्म के प्रतिनिधि इस परिषद में गये।

धर्म की चर्चा के लिये तद्-तद् धर्म के विद्वानों की अग्नश्यकता होती है, न कि किसी प्रतिनिधि की। परंतु इस सूक्ष्म बात की समझ व पाश्चात्य प्रजा के हेतुओं पर शंका - ये दोनों ही बातें उस समय असंभव थीं। “प्रतिनिधि” और “निष्णात-विद्वान” के बीच क्या अंतर है? यह बात उस समय ख्याल में न आयी हो, यह उस समय के वातावरण के मान से सह ! संभवित है ! किंतु अब कूटनीति से बनाया गया उनका चक्रव्यूह भारतवासियों को ठीक से समझ लेना चाहिये । नहीं तो ‘सुज्ञ’ माने जाने वाले लोग भी बुद्धि की कमी, मूढ़ता व ठगे जाने की निर्बलता वाले सिद्ध होंगे।

अन्य धर्मों के रहस्यों-तत्त्वों को जानने की बात तो मात्र बाहरी दिखावा था। असली बात तो जगत में एक ही धर्म की स्थापना करने की घटना में जगत के अन्य धर्म विरोधी नहीं परंतु सहयोगी बनें, यह चाल थी। यदि ऐसा हो सके तो ही भविष्य में उन्हें अल्पसंख्यक धर्म की श्रेणी में रखकर, बहुमत के आधार पर एक ही विश्व धर्म (ईसाई धर्म) की कबूलात उनसे करवाई जा सकती है। कालांतर में इन अल्पसंख्यक धर्मों का जगत से अस्तित्व मिटा देने के लिये आज उनका साथ लिया जा रहा है। ऐसा साथ लेने के लिये अलग अलग समय पर अलग अलग कार्यक्रम बनाये जाते रहे हैं। १८९२ में तो प्रत्येक धर्मों के प्रतिनिधियों को इस वैश्विक आयोजन के प्रति आकर्षित मात्र करने का व्यूह था।

सन् १९३३ में लंदन में सयाजी राव गायकवाड महाराजा की अध्यक्षता में विश्व धर्म परिषद का आयोजन हुआ। इसमें अहिंसा की एक नयी परिभाषा बनाकर, उसे महत्व देकर, अहिंसा की परंपरागत, मूल, सत्य और व्यापक परिभाषा को हटाने का कार्यक्रम शुरु हुआ। सन् १९३६ में फिर से शिकागो में “सर्व-धर्म परिषद” आयोजित हुई। इसमें सर्व-धर्म-समानता, समन्वय, सामूहिक प्रार्थना इत्यादि कार्यक्रमों को मुख्यता दी गई। तदुपरांत बहुसंख्य के अलावा के (अल्पसंख्य धर्मों के) प्रतिनिधियों को न शामिल करने का सिलसिला शुरु किया गया।

इसके बाद जापान में विश्व धर्म के उद्देश्य के एशिया में प्रचार के लिये परिषद आयोजित हुई।

बहुधा १९६० में मनीला में यूनेस्को संस्था ने अल्पसंख्यक सभी धर्मों को “सर्व-धर्म” की गिनती से बाहर कर दिया और सिर्फ पांच धर्मों के प्रतिनिधियों को बुलाकर ‘सर्व-धर्म’ की विश्व-धर्म परिषद आयोजित की। पांच धर्मों की गिनती ही ‘सर्व-धर्म’ में करके अन्य धर्मों को धर्म मानने की बात ही मिटा देने की और इस बात को प्रस्थापित कर लेने के लिये ही इस परिषद का आयोजन हुआ था।

उसके बाद जुलाई १९६५ में सान फ्रांसिस्को में विश्वशांति के लिये ‘सर्व-धर्म-परिषद’ का आयोजन हुआ और उसमें भी पांच धर्मों को ही स्थान दिया गया।

इसके बाद सितम्बर १९६५ में लंदन में एक ‘सर्व-धर्म-परिषद’ का आयोजन हुआ जिसमें विभिन्न धर्मों के समान तत्त्वों-सिद्धांतों की चर्चा हुई। इसमें भी इन्ही पांच धर्मों को शामिल किया गया।

यह योजना का कैसा खूबी पूर्वक आयोजन है ! १८९२ में सभी धर्मों को स्थान दिया। फिर ‘सर्व-धर्म’ की व्याख्या में ११ धर्मों को शामिल किया। फिर उनमें से मात्र ५ को रखकर ६ धर्मों को निकाल बाहर किया। फिर भी “सर्व धर्म परिषद”, “विश्व धर्म परिषद”, “सर्व-धर्म के प्रतिनिधि” वगैरह शब्दों का सभी और प्रचार जारी रखकर एसा भ्रम बनाये रखा कि “अपने धर्म को विश्व-धर्मों की गिनती से बाहर कर दिया गया है” इसका किसी को भी ख्याल नहीं आया।

लोग ये समझते रहे कि ‘सर्व-धर्म’ अर्थात् उनके धर्म को शामिल रखकर सर्व-धर्म; और पाश्चात्य मुत्सद्दी यह समझते रहे के उनके तय किये गये पांच धर्म अर्थात् सर्व-धर्म और इस भ्रम को कायम रखते हुए वे अपनी योजनानुसार काम करते रहे।

सभी धर्मों के प्रथम चरण से बाद में छंटनी होकर जो ग्यारह धर्म रखे गये, वे थे - (१) वैदिक (२) जैन (३) सिक्ख (४) पारसी (५) बौद्ध (६) इस्लाम (७) ईसाई (८) शिंतो (९) ताओ (१०) कन्फ्यूशियस (११) यहूदी।

दूसरे तबके में जब ५ धर्मों को ही सर्व-धर्म की परिभाषा में रखा गया तो इन ६ धर्मों को निकाल दिया गया - (१) जैन (२) सिक्ख (३) पारसी (४) शिंतो (५) ताओ और (६) कन्फ्यूशियस। इन छ धर्मों को सर्व-धर्म या धर्म की गणना से ही बाहर कर देने का अधिकार किसने दिय ?

तदुपरांत इस तरह की विश्व धर्म परिषद के आयोजन का निर्णय विश्व के सर्व धर्म के सच्चे प्रतिनिधियों तथा तद्-तद् धर्म के धर्मगुरुओं की एकत्र-आपसी सलाह, पूर्व सहमति के बिना ही यह निर्णय इसाई धर्मगुरुओं ने स्वेच्छा से ही ले लिया।

इतना ही नहीं, सच्चे प्रतिनिधियों या अधिकृत प्रतिनिधियों को न बुलाकर कृत्रिम/ स्वयंभू/ स्वयं अधिकृत प्रतिनिधि के रूप में तद्-तद् धर्म के कुछ विद्वानों को बुलाकर उनके साथ से अपनी योजना क्रियान्वित की। इस तरह प्रत्येक धर्म को भी दो भागों में बाँट दिया - परंपरागत प्रतिनिधियों द्वारा आचरित व प्रचारित धर्म और नये अस्तित्व में आये प्रतिनिधियों द्वारा प्रचारित धर्म।

स्वामी विवेकानंद वैदिक धर्म के तथा वीरचंद राघवजी गांधी जैन धर्म के इस तरह के नये स्वरूप के प्रतिनिधि थे। भारत के तद्-तद् धर्मों में उस समय प्रवर्तमान स्थिति में दोनों में से किसी का भी महत्व न था। किंतु पाश्चात्यों द्वारा, इस देश की तत्कालीन सरकार द्वारा तथा अन्यों द्वारा उनके व्यक्तित्व को महान स्वरूप दिया गया।

तो ये था विश्व धर्म परिषदों का संक्षेप में इतिहास, उसके उद्देश्य और उन उद्देश्यों में अब तक की कार्यवाही और सफलता का इतिहास।

इसी श्रंखला में एक विश्व धर्म की स्थापना हेतु चली गई एक चाल पर ध्यान दें। ईसाई धर्म के एक बिशप को स्वप्न आता है कि विश्व के सभी धर्म एक हों। टाइम्स ऑफ इंडिया में छपी एक खबर, (जिसका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया है) को ध्यान से पढ़ें।

“बिशप का स्वप्न, विश्व के धर्म एक हों”

(पी. पी. मथाई द्वारा)

टाइम्स ऑफ इंडिया की समाचार सेवा

कोट्टायम, २२ फरवरी १९९६

कैलिफोर्निया के एपिस्कोपल चर्च के बिशप विलियम ई. स्वींग ने ‘यूनाइटेड नेशन्स’ संस्था की ही तरह ‘यूनाइटेड रिलिजियन्स ऑर्गेनाइझेशन’ नामक संस्था की रचना का सुझाव दिया है।

एशिया के ईसाईयों के सबसे बड़े सम्मेलन - १०१ वां ‘मारामोन कन्वेंशन’ - जिसकी पूर्णाहुति हाल ही में हुई, में बोलते समय बिशप विलियम ने विश्व के सभी धर्मों को एक छत्र के नीचे लाने की अपने स्वप्न की घोषणा की।

उन्होंने कहा कि मार्च महीने के मध्य तक वे भारत में रहेंगे व भारत के विविध धर्मगुरुओं का इस मुद्दे पर साथ व सहकार प्राप्त करेंगे। वे कांची कामकोटी पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य, दलाई लामा, मदर टेरेसा, डॉ. करणसिंह तथा जैन व सिख धर्म के धर्मगुरुओं से मिलेंगे।

बिशप स्वींग ने, जो इस स्वप्न को साकार करने के विषय में कृत संकल्प हैं, इस बात को ‘ईश्वरी संकेत’ बतलाया है, जिसकी प्रेरणा उन्हें लगभग ढाई वर्ष पूर्व हुई। युनो के चार्टर पर दस्तखत किये जाने की ५० वीं वर्षगांठ को मनाने के अवसर पर ‘यूनाइटेड नेशन्स’ के पदाधिकारियों को दिये जा रहे रात्रि भोज की सभा के दौरान उन्हें इस बात की प्रेरणा हुई। उनके इस विचार को रोनाल्ड रीगन (तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति) तथा मिखाईल गोर्बाचेव (तत्कालीन रशियन राष्ट्रपति) ने भी समर्थन दिया था। अभी तक वे करीब ४० विविध धर्मों के प्रतिनिधियों से बातचीत कर चुके हैं।

इस विचार के मूल में विश्व के सभी धर्मों का सहअस्तित्व है। मानव अधिकारों व मानवों के बीच की असमानताओं के प्रश्नों की चर्चा धर्म की परिधी में रह कर होनी चाहिये। अपने इस विचार पर और स्पष्टीकरण देते हुए बिशप ने बताया कि विचारों का आदान-प्रदान होना चाहिये ताकि विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य के क्षेत्रों में सहकार होना चाहिये।

बिशप पाकिस्तान, खाड़ी के देशों तथा यूरोप के देशों के प्रवास की योजना बना रहे हैं। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि अगले वर्ष के अंत तक वे ‘यूनाइटेड रिलिजियन्स’ के चार्टर का मसौदा तैयार कर लेंगे। इस विषय पर वे पोप तथा एन्टीओक के पितामह का सहकार भी प्राप्त करेंगे। उन्होंने आशा व्यक्त की कि ‘यूनाइटेड रिलिजियन्स’ की छत्रछाया में सभी धर्म एक दूसरे के प्रति आदरभाव रखते हुए भाई-चारे की भावना से व्यवहार करेंगे।”

उपरोक्त समाचार के गर्भ में क्या है? यह समझना जरूरी है।

अलग अलग देशों की भिन्न भिन्न राजकीय, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाएँ, उन प्रजाओं की पोषाकें, रहन-सहन, भाषा, खान-पान, त्यौहार इत्यादि का नाश करके, उसके स्थान पर ईसू के उपदेशों के विरुद्ध काम करनेवाली और पिछले ५०० वर्षों से अस्तित्व में आयी वेटिकन की चर्च संस्था द्वारा निर्धारित सिद्धांतों पर बनी व्यवस्थाएँ दृढ़ करने के लिए आज से ५० वर्ष पूर्व 'यूनो' (यूनाइटेड नेशन्स) की स्थापना की गई थी। इस संस्था की स्थापना में तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री तथा अमरीकी राष्ट्रपति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और रशिया के राष्ट्रपति की भी इसमें सहमति थी। यूनो की स्थापना के बाद एक एक करके अनेक राष्ट्रों को उसका सदस्य बना दिया गया, ताकि यूनो के माध्यम से उन देशों की प्रजाओं के जीवन में आमूल परिवर्तन किये जा सकें।

उदाहरण के तौर पर, 'फाओ' (फूड एंड एग्रीकल्चर ऑरगेनाइझेशन) द्वारा तय की गई अन्न नीति विश्व के सभी राष्ट्रों में उन राष्ट्रों के कृषि विभागों द्वारा लागू की जा रही है। इसी तरह से 'यूनो' की अर्थात् पश्चिम के श्वेत मुत्सद्दीओं द्वारा विश्व के सभी बच्चों के लिए बनाई गई नीति- 'यूनिसेफ' संस्था के द्वारा सभी राष्ट्रों में क्रियान्वित की जा रही है। इसी तरह 'यूनो' की 'वर्ल्ड हेल्थ ऑरगेनाइझेशन' द्वारा तैयार की गयी स्वास्थ्य नीति तथा "इन्टरनेशनल लेबर ऑरगेनाइझेशन" द्वारा तैयार की गयी श्रमिक नीति का पालन भी सदस्य राष्ट्रों को करना ही पडता है।

आज ५० वर्षों में यूनो की संस्था कितनी शक्तिशाली बन चुकी है, इसका अनुभव किया जा सकता है। अश्वेत प्रजाओं के देशों पर यूनो की संस्था गहरा दबाव डाल सकती है। उसके आदेशों की अवगणना करने वालों पर आर्थिक नाकेबंदी बिठायी जाती है।

अलग अलग राष्ट्रों के राजनैतिक वैश्वीकरण के उद्देश्य को सफल बनाने के बाद 'यूनो' अब आई.एम.एफ. तथा वर्ल्ड बैंक जैसी संस्थाओं के माध्यम से आर्थिक वैश्वीकरण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रही है। जिसके फलस्वरूप समस्त विश्व में एक ही प्रकार की नाप-तौल पद्धति दाखिल की गयी है। इसी प्रकार समस्त विश्व में एक ही मुद्रा का प्रचलन हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी (यह मुद्रा शायद डॉलर भी हो सकती है)। इसके साथ ही साथ विश्व के सभी राष्ट्रों में हाल में प्रवर्तमान विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के स्थान पर 'यूनो' द्वारा तय की गई सामाजिक व्यवस्थाएँ लागू हो जायेंगी।

इसके बाद का कदम होगा विश्व के धर्मों के वैश्वीकरण का। इसके लिये यूनो जैसी ही 'यूनाइटेड रिलिजियन्स' (URs) नामक संस्था की स्थापना करने के चक्र गतिमान हो चुके हैं। विभिन्न देशों में प्रवर्तमान धर्म के सिद्धांतों, हिंसा-अहिंसा की परिभाषाओं, धार्मिक अनुष्ठानों, धार्मिक विधियों आदि का विनाश करके, उसके स्थान पर वेटिकन संस्था द्वारा तय की जाने वाली धर्म की परिभाषा, धार्मिक विधियाँ, धर्मग्रंथ आदि प्रस्थापित करने के लिए 'यूनाइटेड रिलिजियन्स' नामक इस नई संस्था का उपयोग करने की गूढ़ योजना है। इस हेतु को फलित करने के लिए विश्व के सभी धर्मों को एक छत्र के नीचे लाने के लिए अब प्रयास होंगे। जिस तरह से राष्ट्रों को यूनो का सदस्य बनाया, उसी तरह प्रत्येक धर्म को 'यूनाइटेड रिलिजियन्स' संस्था के सीधे या परोक्ष रूप से सदस्य बना लिये जायेंगे, जिससे उस संस्था के द्वारा तय सिद्धांत सदस्य धर्मों को स्वीकार करने ही पडेगें। ऐसा होने से हाल के धर्मों के अलग अलग अस्तित्व का विनाश हो जायेगा।

अतः भारत के सभी धर्मगुरुओं से नम्रतापूर्वक विनंती है कि 'यूनाइटेड रिलिजियन्स' नामक संस्था की स्थापना का तीव्र विरोध करें। इस संस्था की स्थापना के लिए अमरीका तथा रशिया के राष्ट्रपतियों अर्थात् राजनैतिक नेताओं ने हरी झंडी दिखायी है। इंग्लैंड के प्रधान मंत्री की भी इस विषय में सहमति है। धार्मिक स्वरूप की संस्था की स्थापना के लिए राजनैतिक नेताओं की सहमति और अनुमोदन क्यों लिया जा रहा है ? सम्मोहित

करने वाले शब्दछल में फँस कर इस संस्था का सदस्य न बनना ही हितावह है, अन्यथा हमारे धर्मों का स्वतंत्र अस्तित्व विनष्ट हुए बिना नहीं रहेगा।

पर्दे के पीछे एक विश्व धर्म करने की जो तैयारियाँ चल रही हैं इसकी परिणति अब धर्माचार्यों की 'सहास्राब्दि विश्व-शांति परिषद' में हो रही है, जिसका आयोजन अगस्त २००० में यूनाइटेड नेशन्स के तत्त्वाधान में होगा। इस विषय में टाइम्स ऑफ इंडिया में छपी दि. २६-५-२००० की संलग्न रिपोर्ट पढ़ें। दुनिया के सभी धर्मों को एक छत्र के नीचे लाने की बात इसमें कही गई है। छत्र का नाम गर्भित रखा गया है किंतु षडयंत्र की तह तक पहुँचने वाले समझ ही जायेंगे कि यह छत्र वेटिकन का है।

'समिट' की तैयारी जोरों पर है। पश्चिमी विश्व की सारी ताकतें इसके पीछे लगी हैं, किंतु बलि वेदी पर चढ़ने वाले धर्म के धर्माचार्यों और धर्म का पालन-आचरण करने वालों को इस बात की कोई चिंता - चिंता तो बाद की बात है, शायद पूरी जानकारी और भयंकरता का अहसास भी नहीं है।

धर्म क्षेत्र में आने वाले आमूलचूल परिवर्तन और विध्वंस की चेतावनी देने का यह नम्र प्रयास है और विनंती है धर्माचार्यों से कि वे जागें और इसे रोकें।



युनाईटेड नेशन्स के तत्त्वावधान में अगस्त २००० में आयोजित धार्मिक व आध्यात्मिक नेताओं की सहस्राब्दि विश्व शांति शिखर परिषद द्वारा जारी उद्घोषणा के अनुच्छेदों का “पोस्ट मॉर्टम”

इस विश्व शांति शिखर परिषद की उद्घोषणा के अनुच्छेदों का ‘पोस्ट मॉर्टम’ करने से पहले इस परिषद में उपस्थित रहने वाले धर्मगुरुओं से निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर मांगे जायें;

१) इस शिखर परिषद का उत्थान किसने किया था ? जगत के धर्मगुरुओं, और विशेषतः आध्यात्मिक विश्व में नेता के स्थान पर आरूढ़ भारत के धर्मगुरुओं ने इस परिषद का उत्थान किया था ? या किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों ने या किन्हीं संस्थाओं ने इस परिषद का उत्थान किया था ? ऐसे व्यक्ति को, व्यक्तियों को या संस्था को एसी परिषद आयोजित करने का अधिकार था ? एसा अधिकार उन्हें कहाँ से मिला ?

२) भारत के धर्मगुरुओं को इस परिषद में शामिल होने का निमंत्रण किसने किया ? निमंत्रण देने वालों को वैसा अधिकार था ? और क्या तद् तद् धर्म के अधिकृत धर्मगुरुओं को निमंत्रण भेजा गया था ? या फिर परिषद आयोजकों को अभीष्ट ऐसे धर्मगुरुओं को निमंत्रण दिया गया था ? या फिर भारत के धर्मगुरु स्वयं इस परिषद में शामिल हुए ?

३) किस प्रकार की विश्व शांति के लिये इस शिखर परिषद का आयोजन हुआ था ? भारतीय आदर्श की विश्व शांति के लिये ? या यूनो के आदर्श के विश्व शांति के लिये ? दोनों के विश्व शांति के आदर्शों में जमीन-आसमान का अंतर है।

भारतीय आदर्श की विश्वशांति में सभी जातिया का, सभी प्रजाओं का, सभी धर्मों का, सभी रंगों की प्रजाओं का अस्तित्व जगत में टिक सके एसा अवकाश है।

यूनो के आदर्श की विश्व शांति में सभी प्रकार के भेदों की नाबूदी ईष्ट है। जगत में मात्र एक ही धर्म (ईसाई धर्म) और एक ही रंग (श्वेत) की प्रजा को टिकाये रखने का उसका आदर्श है।

किस आदर्श की विश्व शांति की स्थापना के लिये इस परिषद को आयोजित किया गया इसका प्रामाणिक खुलासा परिषद के आयोजकों से भारत के धर्मगुरुओं को प्राप्त कर लेना चाहिए।

४) इस परिषद की उद्घोषणा किसने तैयार की थी ? क्या जगत भर के धर्मगुरुओं ने इकट्ठे होकर यह उद्घोषणा तैयार की थी ? या यह उद्घोषणा पहले से ही तैयार थी ? और जगत के धर्मगुरुओं ने इस पर अपने हस्ताक्षर करके अपनी स्वीकृति दे दी ?

परिषद में सम्मिलित धर्मगुरुओं की ओर से उनके अनुयायीओं को उपरोक्त प्रश्नों के सही उत्तर मिलें तो वे अपने अपने धर्मगुरुओं के इस शिखर परिषद में उपस्थित रहने के निर्णय का समर्थन भी कर सकेंगे।

द्विअर्थी शब्दों और कपट से भरपूर इस उद्घोषणा की भाषा को समझने का अब हम प्रयास करें।

उपर दर्शाया है वैसे विश्व शांति शब्द द्विअर्थी है। इस परिषद को आयोजित करने वाले किस आदर्श की विश्व शांति की ओर विश्व को ले जाना चाहते हैं उसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है, उल्टा उसे छुपा कर रखा गया है।

इस उद्घोषणा की शुरुआत में कहा गया है ‘Humanity stands at a critical juncture in history’ अर्थात् ‘मानवजाति आज संकटपूर्ण स्थिति में आ पड़ी है’। एसा क्यों हुआ ?

‘मानवजाति आज संकटपूर्ण स्थिति में आ पड़ी है’ - यह विधान वर्तमान परिस्थिति की जानकारी तो देता है। परंतु इस परिस्थिति को जन्म देने वाले कारण क्या हैं ? ये कारण सत्य हैं या झूठे ? इसकी पूरी जाँच किये बिना अगले कदमों के बारे में कैसे विचार हो ? जिन कारणों से यह परिस्थिति निर्मित हुई है उन कारणों को दूर करने से क्या पूर्ववत् सुस्थिति की स्थापना नहीं हो सकती ? क्यों नहीं हो सकती ? भूतकाल में मानवजाति एसी संकटपूर्ण स्थिति में आयी थी ? क्यों नहीं आयी थी ? और अगर आयी थी तो उस स्थिति से बाहर निकलने के लिये क्या उपाय किये गये थे ? वही उपाय क्या आज नहीं किये जा सकते ? क्यों नहीं किये जा सकते ?

‘मानवजाति आज संकटपूर्ण स्थिति में है’ - यह विधान ही प्रामाणिक करता है कि मानवजाति एसी विकट स्थिति में पहले कभी नहीं आयी थी। इसका कारण था - भारत के महासंतों द्वारा मोक्ष के लक्ष के साथ रची गयी चार पुरुषार्थों की नींव पर आधारित जीवन व्यवस्था - संस्कृति, जो सारे विश्व में थोड़े या अधिक अंशों में सार्वत्रिक लागू थी। यूरोपियन राजनैतिक विद्वानों द्वारा फैलाये गये झूठ के अनुसार यह संस्कृति मात्र ५००० वर्ष पुरानी नहीं है। लाखों वर्ष पूर्व इस संस्कृति की रचना हुई है और लाखों वर्षों से उसका अस्तित्व टिका हुआ है, यही तथ्य इस संस्कृति की विश्व कल्याणकारिता को साबित करता है।

सत्य बात तो यह है कि पिछले ५०० वर्षों से वेदिकन चर्च द्वारा ईसा और शोषण की नींव पर टिकी अनार्य जीवन व्यवस्था उत्पन्न की गयी है और उसके विश्व व्यापी अमलीकरण द्वारा आर्य जीवन व्यवस्था के अमल में गंभीर गड़बड़े पड़ने लगे हैं। इसके फलस्वरूप ही मानवजाति आज विकट परिस्थिति में आन पड़ी है। इस विकृत को छुपा कर मानवजाति के लिये ‘‘नयी दिशा’’ तय करने के प्रयास में सहायक बनने के लिये धार्मिक व आध्यात्मिक नेतागिरी की आवश्यकता बताई जा रही है।

क्या अर्थ है इस ‘‘नयी दिशा’’ का ? वास्तव में नयी दिशा तय करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। वेदिकन द्वारा फैलायी गयी अनार्य जीवन व्यवस्था का अमलीकरण जगत भर में समाप्त करवा कर मानवजाति को समय की कसौटी पर खरी उतरने वाली विश्व कल्याणकर आर्य जीवन व्यवस्था के अमल की ओर ले जाने की आवश्यकता है और इस भंगीरथ कार्य की जिम्मेदारी भारत के धर्मगुरु तत्काल निभाना शुरु कर दें, यह जरूरी है।

जगत भर के धर्मगुरुओं को नयी दिशा निश्चित करने की या किसी अन्य द्वारा तय की गयी दिशा-शून्य नयी दिशा की ओर जगत को ले जाने की जिम्मेदारी उठाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी जिम्मेदारी तो अध्यात्मवाद की नींव पर खड़ी विश्व कल्याणकर आर्य जीवन व्यवस्था की पुनः प्रतिष्ठा करने की है।

इस उदघोषणा की शुरुआत में ‘‘धार्मिक और आध्यात्मिक नेता’’ ऐसे दो विभाग क्यों किये गये हैं ? क्या धार्मिक नेता आध्यात्मिक नेता नहीं हैं ? मानव के आध्यात्मिक विकास के लिये ही तो धर्म की उत्पत्ति हुई है। धर्मगुरु इस विकास में सहायक बनते हैं, मार्गदर्शक बनते हैं। अतः धर्मगुरु ही आध्यात्मिक नेता भी हैं। तो फिर ‘‘आध्यात्मिक नेता’’ शब्द प्रयोग करने के पीछे उदघोषणा तैयार करने वालों का क्या प्रयोजन है ? इस बात का स्पष्टीकरण होना चाहिए।

अब उदघोषणा की चर्चा करें

उदघोषणा की प्रस्तावना के पहले अनुच्छेद में लिखा है ‘‘Whereas the United Nations and the religions of the World have a common concern for human dignity, justice and peace’’

यूनाइटेड नेशन्स नाम की संस्था को मानव जाति के (सभी मानवों के) गौरव की रक्षा में, न्याय की रक्षा में, जगत में सच्ची शांति की स्थापना में कोई रस है ही नहीं। उल्टे इन तीनों चीजों का अस्तित्व खतरे में पड़े इसी आशय से इस संस्था की उत्पत्ति सन् १९४५ में यूरोपियन राजनैतिक नेताओं ने (धार्मिक नेताओं ने नहीं) की है, और उसी दिशा में आज तक के उसके सारे प्रयास रहे हैं। भारत के धर्मगुरुओं को अध्यात्मवाद पर आधारित तत्त्वों की रक्षा में जिम्मेदारीपूर्वक का रस है, जबकि यूनो को हिंसा व शोषण पर, आधारित भौतिकवादी तत्त्वों और व्यवस्थाओं को सारे जगत में फैलाने में रस है। अलबत्त इस बात को आज गुप्त रखा जा रहा है, क्योंकि भौतिकवाद के आधार का न्याय, मानव गौरव तथा शांति फैलाने में अध्यात्मवाद को समर्पित भारत के धर्मगुरुओं के सहकार की यूनो को अभी दरकार है।

यूनो भौतिकतावादी बल है, भारत के धर्मगुरु अध्यात्मवादी बल हैं। इस दोनों बलों का मेल असंभव है। ये दोनों बल एक मंच पर साथ बैठ कर काम कर ही नहीं सकते।

तदुपरांत यूनो शुद्ध धार्मिक संस्था नहीं है। भारत की धर्मगुरु-संस्था शुद्ध धार्मिक संस्था है। इसलिये भी इन दोनों का एक मंच पर इकट्ठे आना संभव नहीं।

भारत और जगत के सभी धर्मगुरुओं को यूनो के सच्चे स्वरूप को पहचान लेना चाहिये। उसके मीठे और भपकेदार वाणी-विलास से या आडंबर भरी परिषदों के आयोजन से प्रभावित नहीं हो जाना चाहिए। अध्यात्मवाद की नींव पर रची गयी धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक व राजकीय व्यवस्थाओं को नष्ट करके, भौतिकवाद की नींव पर रची गयी धार्मिक आदि व्यवस्थाओं को जगतभर में फैलाने के लिये यह संस्था कार्य कर रही है। "नयी दिशा" का अर्थ है भौतिकवाद की नींव पर बनाई गई जीवन व्यवस्था।

प्रस्तावना के अनुच्छेद तीन व चार में कहा गया है. 'Whereas religions have contributed to the peace of the world, but have also been used to create division and fuel hostilities'

"Whereas our world is plagued by violence, war and destruction, which are sometimes perpetrated in the name of religion."

किसी व्यक्ति ने, व्यक्तियों के समूह ने धर्म का या उसके संस्थापक का उपयोग मानवजाति को विभक्त करने में या अत्याचार करने में किया हो तो उसमें उस व्यक्ति का या व्यक्तियों के समूह का दोष है। उनके कुकृत्यों के लिए धर्म को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। विश्व का अन्ततोगत्वा कल्याण ही हो ऐसे उपाय बताने वाली धर्मसत्ता पर व्यक्तियों के दोषों का आरोपण करना यह तो धर्म सत्ता पर ही अत्याचार करना हुआ। आत्मा के विकास में सहायक धर्म महासत्ता के प्रभाव से ही हिंसा व युद्धों से घेर लिये गये वर्तमान विश्व में आज भी परोपकार वृत्ति, दया, अनुकंपा, क्षमा वगैरह सदगुण उभर रहे हैं।

जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूहों ने धर्म के नाम का उपयोग जगत की मानवजातियों के विभाजन करने के लिये ही नहीं, अपितु मानवों कि जातियों की जातियों का नाश करने में, मानवजाति पर जुल्म व अत्याचार की झड़ियाँ बरसाने में किया हो, उसमें वेटिकन चर्च का नाम मुख्य रूप से उभर कर आता है।

ईसा मसीह ने या उनके द्वारा स्थापित ईसाई धर्म ने मानवजाति को नुकसान नहीं पहुँचाया है। हाँ, ईसा मसीह के नाम पर, उनके आदेश के विरुद्ध जाकर, वेटिकन नामक चर्च संस्था ने पिछले पाँच सौ वर्षों में मानव जातियों के निकंदन का, उन पर जुल्म और अत्याचार की झड़ियाँ बरसाने का पिशाची कृत्य किया है, जिसके लिये वेटिकन चर्च को सारे विश्व की क्षमा भी माँगनी पड़ी है। वेटिकन चर्च के इस पाप का बोझ ईसा मसीह पर, ईसाई धर्म पर या जगत के अन्य धर्मों पर नहीं डाला जा सकता।

उपर अनुच्छेद तीन में प्रयुक्त शब्द but have been used अधिक से अधिक तो वेटिकन चर्च संस्था को और उसके ईशारों पर चलती युनो संस्था को लागू पड़ते हैं।

उद्घोषणा की प्रस्तावना के अनुच्छेद ६ में कहा गया है 'Whereas no individual, group or nation can any longer live as an isolated microcosm in our interdependent world, emerging global community.'

यह सत्य तो भारत के महासंतों को युगों पूर्व से समझ में आया ही था। तभी तो उन्होंने जगत को "वसुधैव कुटुम्बकम्" नामक सूत्र देकर उस पर चलने का उपदेश दिया। इतना ही नहीं "आत्मवत् सर्व भूतषु" - स्वयं के समान ही सभी जीवों को मानने का उपदेश देकर जीव मात्र की हिंसा से संपूर्णतया या जितना अधिकाधिक हो सके, निवृत्त होने का आदेश दिया, और उसके उपाय भी बताये। परंतु वेटिकन चर्च के ईशारे पर नाचती युनो संस्था ने भारत के महासंतों के आदेशों/उपदेशों का पालन न हो सके इतनी हद तक, इन आदेशों के पालन में सहायक बनती चार पुरुषार्थ की नींव पर खड़ी आर्य जीवन व्यवस्था को और उसके अंगों को तोड़फोड़ दिया है। 'all must realise' यह realise करने की जरूरत तो युनो और उसके सर्जको को है।

'Emerging Global Community' इसमें 'Emerging' शब्द क्या इंगित करता है ? 'Global Community' के सिद्धांत को तो भारत के संतो ने सदियों से स्वीकारा है। तो यह कौन सी नई वैश्विक कोम्युनिटी उभर रही है ? अस्तित्व में आ रही है ?

प्रस्तावना के अनुच्छेद ७ में कहा गया है: 'Whereas in an interdependent world peace requires agreement on fundamental ethical values'.

ये मूलभूत नैतिक मूल्य कौन से हैं ? और वे किसने तय किये हैं ? उनकी जानकारी प्राप्त किये बिना ही विश्वशांति शिखर परिषद में एकत्रित धर्मगुरुओं ने यह उद्घोषणा पत्र तैयार किया होगा ? और उस पर हस्ताक्षर किये होंगे ? क्या नैतिक मूल्यों को आध्यात्मिक मूल्यों से भी महान माना गया है ? नैतिक मूल्य आध्यात्मिक मूल्यों से ऊँचे हैं या नीचे ? क्या मात्र नैतिक मूल्यों से जगत में वास्तविक विश्व शांति की स्थापना हो सकेगी ? या फिर अध्यात्मवाद की बुनियाद पर खड़े आध्यात्मिक मूल्यों से जगत में वास्तविक शांति की स्थापना होगी ? क्या नैतिक मूल्य अध्यात्मवाद की बुनियाद पर खड़े होंगे ? या फिर भौतिकवाद की बुनियाद पर खड़े होंगे ?

प्रस्तावना के अनुच्छेद ८ में कहा गया है: 'Whereas there can be no real peace until all groups and communities acknowledge the cultural and religious diversity...'

क्या यह बात युनो को मान्य है ? युनो ने तो विश्व में से रंगभेद खत्म करने का अर्थात् अलग अलग रंग की प्रजाओं का भेद मिटाने का प्रस्ताव किया है। और अब वह धर्मभेद खत्म करने का प्रस्ताव रख सके उस दिशा में पहले से निर्धारित कार्यक्रमों के अनुसंधान में आगे बढ़ रहा है। युनो को अलग अलग रंग की प्रजाओं का और अलग अलग धर्मों का अस्तित्व मान्य नहीं है, यह बात साबित हो सकती है। अगर यह बात साबित हो जाय तो क्या इस परिषद में उपस्थित धर्मगुरु, युनो के नेतृत्व में वास्तविक शांति की स्थापना हो सकती है, ऐसी भ्रमणा से बाहर आयेगे ?

प्रस्तावना के अनुच्छेद ९ में कहा गया है: 'Whereas building peace requires an attitude of reverence for life, freedom and justice, the eradication of poverty, and the protection of the environment...'

जब युनो और उसकी अनेक शाखायें जगत की अश्वेत प्रजाओं के आसपास गुलामी का फंदा ज्यादा से ज्यादा कसने की नीतियाँ बना रहे हैं, और उसे अमल में ला रहे हैं, प्राकृतिक सिद्धांतों के आधार पर बनाये हुये न्याय का सरेआम भंग कर रहे हैं, गरीबी और भूखमरी बढ़ाने की नीतियाँ अमल में ला रहे हैं, वायु-जल-जमीन दूषित हो ऐसी औद्योगिक आदि नीतियाँ बना रहे हैं, तब इस परिषद में शामिल धर्मगुरु उसी युनो के साथ हाथ मिला कर जगत में से इन दूषणों को किस प्रकार दूर करेंगे ?

विश्व में फिलहाल कौन सी परिस्थिति विद्यमान है उसकी उपरोक्त अनुसार जानकारी देने के बाद परिषद के धर्मगुरु अब आघातजनक कदम उठा रहे हैं। ऊपर प्रस्तावना में जो अस्पष्टताएँ हैं, उसका युनो से खुलासा मांगे बिना परिषद के धर्मगुरु किस तरीके से युनो जैसी राजकीय संस्था के साथ हाथ मिलाने की वचनबद्धता प्रकट कर रहे हैं ?

क्या जगत के धर्मगुरु जगत में वास्तविक विश्व शांति स्थापित करने में सक्षम नहीं है ? किसलिए उनको जगत में अशांति फैलानेवाली युनो संस्था के सहारे शांति स्थापित करने के स्वप्न देखने चाहिए ? युनो के नेतृत्व तले शांति स्थापित करनी हो तो जगत में से धर्मभेद (अलग अलग धर्म) और रंगभेद (अलग अलग रंगों की प्रजा) को खत्म करना होगा। क्या परिषद के धर्मगुरुओं को यह मान्य है ?

उद्घोषणा के सभी अनुच्छेद मात्र शब्दों की शोभा बढ़ानेवाली - आडंबरयुक्त भाषा है, जो मात्र कान को सुनने में मीठी लगे वैसी है। युनो के नेतृत्व तले मानव समाज के प्रति कोई भी जिम्मेदारी जगत के धर्मगुरु निभा ही नहीं सकते।

मानव समाज के प्रति धर्मगुरुओं को यदि अपनी जिम्मेदारी निभाना हो तो जगत में चार पुरुषार्थ की नींव पर खड़ी संस्कृति को लागू करवाने में युनो का सहकार मांगना चाहिए। युनो को चार पुरुषार्थ की संस्कृति के विनाश की योजनायें बनाने और उसे लागू करवाने के कार्यक्रमों को छोड़ने के लिये बाध्य करना चाहिए। यदि ऐसा हो जाय तो फिर जगत के धर्मगुरुओं को और कुछ भी करने को नहीं रहेगा। क्योंकि चार पुरुषार्थ की आर्य जीवन व्यवस्था ही मानवप्रजा का रक्षण करने में और उसको सन्मार्ग की तरफ ले जाने में सक्षम है। युनो द्वारा निर्मित अनार्य जीवन व्यवस्था के अमल से और उसको सहारा देने से विश्व शांति प्रस्थापित होने की बजाय अशांति ही बढ़ेगी, गरीबी बढ़ेगी, महंगाई बढ़ेगी, भूखमरी बढ़ेगी और अनेक प्रकार के जुल्मों की झड़ी अश्वेत प्रजा पर बढ़ती ही जायेगी।

भारत के महासंतों द्वारा जगत को भेंट दी हुयी चार पुरुषार्थ की नींव पर खड़ी आर्य जीवन-व्यवस्था ही विश्व में वास्तविक शांति स्थापित करने का अमोघ और एकमात्र साधन है। इस व्यवस्था के अमलीकरण में आनेवाले अवरोधों को दूर कर उसका अचूक अमलीकरण यही जगत के धर्मगुरुओं का और खास करके भारत के धर्मगुरुओं का मानवजाति के प्रति पवित्र कर्तव्य है। मानवजाति के प्रति उनको यह कर्तव्य निभाने के लिये कटिबद्ध होना चाहिए, न कि युनो जैसी संस्कृतिभक्षी संस्था के साथ collaborate करने का स्वप्न में भी विचार करना चाहिये।



वर्तमान राज व्यवस्था गलत है

आर्य प्रजा को बचाने के लिये प्राचीन व्यवस्था पुनर्जिवित करें
भारतीय प्रजा का जीवन, संस्कृति और धर्म भारी खतरे में है ।

श्वेत प्रजा के गुप्त आक्रमण से रंगीन प्रजाका सर्वनाश हो रहा है । अंतरराष्ट्रीय राजकारणने रंगीन प्रजा को बरबाद करने के लिए षडयंत्र बना दिया है ।

श्वेत प्रजा के प्रतिनिधि आर्य संस्कृति एवम् आर्यप्रजा के विनाश के लिए अनेक वर्षों से कटिबद्ध हो रहे हैं । अपनी उस योजना के अनुसार वे जब भारत पर शासन चलाते थे तब भी जो न कर सके वही अन्न कर रहे हैं । स्थानिक स्वराज्य देकर भारत के साथ वनावट की हैं, क्योंकि हमारी पुरानी राज्य व्यवस्था नष्ट कर दी गई हैं । और अपने शासन कालिन राज्य पद्धति और शिक्षा पद्धति को द्रुत करके, उसके द्वारा देशी अंग्रेजों को पैदा कर दिया हैं । श्वेत प्रजा के उन मुत्सदियों का प्रतिकार केवल वही भारतीय कर सकता है जो दूरदर्शी देशप्रेमी हों । उसको आर्य संस्कृति एवम् आर्यप्रजा को विनाश की आंधी में से बचाने का प्रचंड पुरुषार्थ करना होगा । तब ही उनकी उक्त योजना नष्ट होगी । किन्तु उस कार्य के लिए भारत को फसानेवाली आभासी आजादी प्राप्त करने में जितना कष्ट उठाना पड़े उससे कहीं अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा ।

हमारे महान भारत की संस्कृति एवम् प्रजा के संस्कारों को समाप्त करने के लिए श्वेत प्रजाने क्या क्या नहीं किया ।

1. राज्य व्यवस्था एवम् राज्य पद्धति में परिवर्तन किया जो भारत की प्रणालि और संस्कृति के खिलाफ हैं ।
2. राज्य पर से निःस्वार्थ तंत्र पुरुषों का वर्चस्व नष्ट कर दिया और बहुमत वाद की विचारधारा में फसा दिया ।
3. आर्य प्रजा के हितचिंतक महाजनों को बलहीन करके उनकी नामशेष किया ।
4. अंग्रेज मुत्सदी मेकले ने ऐसी शिक्षण प्रणालि प्रस्थापित की जिसको आज तक कोई बदल नहीं सका । उसने जो आगाही की थी वह सत्य सिद्ध हुई हैं, उसकी शिक्षा पद्धति के कारण भारत के लोग अपनी संस्कृति, धर्म एवम् अपनी उत्तम समाज व्यवस्था से आप ही आप विमुक्त हो गए हैं । देश में आज अनेक देशी अंग्रेज पैदा हो रहे हैं, जो कि श्वेत प्रजा के मुत्सदियों के हाथ के खिलाफे बन गए हैं ।
5. उन्होंने भारत के सुखी ग्रामजनों की ताकत नष्ट करने के लिए खेती की पद्धति भी बदल दी है । और खेती के आधार रूप पशुधन को बलहीन बनाने के लिए चरागाहों को धीरे धीरे कम कर दिया हैं । पशुओं को निर्बल बनाकर उनकी कल के योग्य ठहराया । हमारे देश में उपयोगी और विनउपयोगी पशुधन जैसा कोई ख्याल पहले नहीं था । अंग्रेजोंने आ कर इन शब्दों के प्रयोग द्वारा भारतीय पशुधन को नष्ट करने की योजना सफलता पूर्वक बनाई : *किन्तु भारतीय प्रजा तो मानती हैं कि पशुओं के विनाश का तात्पर्य है, "उनका अपना विनाश" ।
6. भारतीय प्रजा को निर्बल बनाने के अनेक प्रयत्न श्वेत मुत्सदीयोंने सफलता पूर्वक किये हैं ।
7. गो-वंश आधारित अहिंसक अर्थतंत्र के स्थान पर शोषणयुक्त पाश्चात्य हिंसात्मक अर्थतंत्र अपनाया । इसु के १८५७ साल तक भारत का अर्थतंत्र पुर्णतः गो-वंश पर आधारित था । इसके द्वारा खेती के लिए आवश्यक गोबर खातर पर्याप्त मात्रा में बिना किसी खर्च के प्राप्त होता था । अतः खेत पैदाश बिना खर्च को प्राप्त होती थी । किसान स्वावलंबी था । लोगों को अनाज, घी, दूध, आदी सहज में ही मिलता था । पाश्चात्य हिंसात्मक अर्थतंत्र पद्धति से देश को गरीब बना दिया है । उन्होंने भारत के करोड़ों मानव एवम् पशुओं को जीते जी अस्थिपंजर बना रखा है ।
8. श्वेत प्रजा ने भारत में क्रिश्चियन मिशनरीओ को बुरीयादे इस प्रकार डाली हैं जिससे अबतक भी धर्म परिवर्तन प्रवृत्ति चालु रही हैं । वे हिन्दुओं को क्रिश्चियन बना रहे हैं, अतः क्रिश्चियनों की आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है ।

ये विदेशी लोग अंतरराष्ट्रीय संस्थाओ के द्वारा विकास के नाम पर सहायता प्रदान करके आर्य संस्कृति को खत्म कर रहे हैं, और सामाजिक व्यवस्था को टिन्नभिन कर रहे हैं ।

विरोध वेटिकन का, न कि ईसाई धर्म का

ईसा मसीह का पंथ शुरु होने के पश्चात् सन् १४९१ तक ईसाई धर्म के संतों ने अपने धर्म के पालन व प्रचार करने के लिये विश्व में चली आती प्रणालिकाओं में किसी तरह की अड़चने पैदा नहीं की थी। आत्मा व जनकल्याण के हित की दृष्टि से ईसा मसीह द्वारा निरूपित दया मार्ग का ही उन्होंने अवलंबन लिया था और उसका प्रचार करने के लिये यूरोप में जगह-जगह पर प्रार्थना करने के स्थान - चर्च स्थापित किये थे।

वेटिकन चर्च भी एसा ही एक चर्च था।

परंतु ई. स. १४९२ के बाद उस चर्च के धर्मगुरु के रूप में नियुक्त हुए पोप ऐलेक्झेंडर (छठे) ने उस धर्मस्थल को राजनैतिक अड्डे में बदल डाला। ईसाई धर्म के अन्य धर्म-स्थलों (चर्चों) के प्रमुख धर्मगुरुओं की मंडली से अपने आप को अलग करके, वेटिकन चर्च के उस धर्मगुरु ने समस्त विश्व को अपनी सत्ता के नीचे लाने की आसुरी लालसा से वेटिकन चर्च का राजकीय केन्द्र में रूपांतर किया। बाहर से उन्होंने धर्मगुरु होने का दिखावा चालू रखा, परंतु आंतरिक रूप से वे राजनैतिक नेता बन गये। तदुपरांत, तब तक वे सिर्फ वेटिकन चर्च के प्रमुख थे, परंतु ई. स. १४९२ के बाद वे स्वयं को ईसाई धर्म के सभी चर्चों के प्रमुख के रूप में तथा ईसाई धर्म के सभी अनुयायीओं के प्रमुख के रूप में मानने लगे और उस मान्यता को पुष्ट करने के व्यवहार शुरु किये। अर्थात् सन् १४९२ के पश्चात् ईसा मसीह के पंथ के स्थान पर वेटिकन पंथ शुरु हुआ। परंतु योरप की प्रजा एकाएक तो वेटिकन पंथ का स्वीकार नहीं करती, इसलिये उनको छलने के लिये ईसा का नाम लेना तो उन्होंने चालू ही रखा। ईसा के नाम पर उन्होंने यूरोप के लोगों को वेटिकन की ओर खींचना शुरु किया।

पूरे विश्व को वेटिकन की सत्ता के नीचे लाने की दुष्ट लालसा पूरी करने के लिये उन्होंने स्पेन व पोर्तुगल के राजाओं का सहयोग मांगा और एसा सहयोग मिलने की लालच में उन्होंने आधा विश्व स्पेन के राजा के चरणों में और आधा विश्व पोर्तुगल के राजा के चरणों में एक जाहिर 'बुल' के माध्यम से भेंट कर दिया। इसके बाद स्पेन के राजा के प्रतिनिधि के रूप में कोलंबस ने पश्चिम के देशों में तथा पोर्तुगल के राजा के प्रतिनिधि के रूप में वास्को-डी-गामा ने पूर्व के देशों में कैसा भयंकर नरसंहार किया यह तो इतिहास - प्रसिद्ध है। यदि पोप ऐलेक्झेंडर (छठे) सच्चे धर्मगुरु होते तो उन्होंने विश्व में एसा नरसंहार शुरु किया होता ? सच्चे धर्मगुरु तो विश्व में शांति फैलाने वाले होते हैं। परंतु १४९२ में वेटिकन के प्रमुख धर्मगुरु के रूप में स्थापित पोप धर्मगुरु न रहकर सत्ता पिपासू राजकीय नेता बन गये थे।

अतः भारत आ रहे पोप से यह स्पष्टीकरण मांगना चाहिये कि -

- १) वे वेटिकन चर्च के प्रमुख धर्मगुरु के रूप में भारत आ रहे हैं ? या
- २) वेटिकन राज्य के राज-प्रमुख के रूप में भारत आ रहे हैं ?

यदि वे वेटिकन चर्च के धर्मगुरु के रूप में भारत आ रहे हों तो हमें उन्हें स्पष्ट रूप से कह देना चाहिये कि ई. स. १४९२ के पश्चात् वेटिकन के राज-प्रमुखों ने धर्मगुरु के आवरण के नीचे विश्व में जो उथलपुथल मचाई है उसके लिये उन पोप के उत्तराधिकारी के रूप में आपको समस्त विश्व की प्रजाओं की क्षमा मांगनी चाहिये और श्वेत/अश्वेत प्रजाओं ने जो असाधारण विनाश सहा है उसकी भरपाई करनी चाहिये। इतना ही नहीं, आपको एक जाहिर निवेदन द्वारा यह घोषणा भी करनी चाहिये कि आप वेटिकन के राज-प्रमुख न रह कर अब एक सच्चे धर्मगुरु बन गये हो और अब से वेटिकन के राजकीय स्वरूप को खत्म कर जगत में उल्कापात मचाना बंद कर दिया है। और इसके प्रमाण स्वरूप ई. स. १४९३ के अन्यायी 'बुल' को तथा उसके अनुसंधान में बने सभी कानूनों/संधियों को निरस्त जाहिर करना चाहिये। आपकी इस घोषणा के बाद एक धर्मगुरु के रूप में भारत में आपका सत्कार करने में हमें आनंद आयेगा।

परंतु यदि आप वेटिकन राज्य के राज-प्रमुख के रूप में भारत आ रहे हों, तो आपको धर्मगुरु का वेश त्याग कर भारत आना चाहिये, ताकि भारत के भोले लोग आपको धर्मगुरु मानकर आपके पंथ के अनुयायी बनने के प्रलोभन में न पड़ें। विश्व की अश्वेत प्रजा के मानव समूहों को ईसाई धर्म बनने के लिये जो प्रलोभन आप दे रहे हो उसका गर्भित उद्देश्य उन मानवसमूहों को ईसा मसीह की मान्यतानुसार आध्यात्मिक विकास हासिल करवाना नहीं है परंतु बहुमत के आधार पर जगत में एक ही धर्म को स्थायी करने के प्रयासों में सफलता प्राप्त करना है।

भारत की प्रजा और उनकी प्रतिनिधि संस्थाओं की ओर से यदि उपरोक्त स्थिति ली जायेगी तो ही पोप के भारत आगमन के अवसर पर विश्व का ध्यान सारी मानव जाति जिस भंयकर परिस्थिति में आ पहुँची है, उसकी तरफ खींचा जा सकेगा और पोप के आगमन के विरोध के सही कारणों पर प्रकाश पड़ेगा।

इटली स्थित वेटिकन चर्च के प्रमुख पोप जॉन पॉल यदि (द्वितीय) एक धर्मगुरु के रूप में भारत आ रहे हों तो उनके आगमन का विरोध करने के कारण निम्नलिखित हैं;

आध्यात्मिक विकास की सीढ़ी चढ़ना चाहने वाले यूरोपीय प्रदेशों की प्रजा को उस प्रदेश के संतों तथा उन संतों की आज्ञा शिरोधार्य करने वाले धर्मगुरु सहायक हो सकते हैं। किंतु इन धर्मगुरुओं को अन्य प्रदेशों में जाकर वहाँ के मानवों के आध्यात्मिक विकास में सहायक बनने का प्रयास नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसे अन्य प्रदेशों में उन प्रदेशों के आध्यात्मिक विकास में सहायक धर्मपुरुष विराजमान होते ही हैं। अन्य प्रदेशों में जाने से आध्यात्मिक जगत के अनुशासन का भंग होता है। ईसा मसीह और उनकी आज्ञा में रहने वाले संतों ने आध्यात्मिक जगत के इस अनुशासन का ई. स. १४९१ तक चुस्तता से पालन किया था।

परंतु ई. स. १४९२ के पश्चात् वेटिकन चर्च के प्रमुख धर्मगुरु के रूप में आये पोप एलेक्झांडर (छठे) ने आध्यात्मिक जगत के इस अनुशासन का भंग करना शुरु किया। उन्होंने अन्य प्रदेशों में अपने शिष्य पादरियों को भेज कर वहाँ के लोगों में ईसू के नाम पर स्वयं का प्रभाव बढ़ाना शुरु किया और इसके लिये उन्होंने भंयकर हिंसा और अत्याचार का सहारा लिया। यह कार्य ईसू के आदेशों-सीख के विरुद्ध था।

संतो - महंतों की बहुलता वाले भारत देश में भी वेटिकन चर्च के पादरी आने लगे। किसी एक विद्यालय के शिक्षक को किसी अन्य विद्यालय के विद्यार्थियों को पढ़ाने की ईच्छा हो तब भी ऐसा करने के लिये उसे दूसरे विद्यालय के प्राचार्य की अनुज्ञा लेनी पड़ती है। एसी अनुज्ञा प्राप्त किये बिना सीधे ही वे दूसरे विद्यालय के विद्यार्थियों को पढ़ाना नहीं शुरु कर सकते। वेटिकन के प्रमुख धर्मगुरु ने भारत के आध्यात्मिक क्षेत्र के अनुशासन को भी भंग किया। भारत के धर्मगुरुओं की अनुज्ञा प्राप्त किये बिना ही उन्होंने इस देश के लोगों को उपदेश देना शुरु कर दिया। इतना ही नहीं, कई तरह के प्रलोभन देकर लोगों को वेटिकन पंथ की तरफ आकर्षित किया।

इतना ही नहीं, वेटिकन के प्रमुख धर्मगुरु ने अन्य देशों की ही तरह भारत में अपने शिष्य - पादरियों को भारत के लोगों के आध्यात्मिक विकास में सहायक होने की गरज से नहीं भेजा था, अपितु विश्व में बहुमत के आधार पर एक मात्र वेटिकन पंथ का अस्तित्व टिका रह सके इसलिये वेटिकन संप्रदाय का बहुमत निर्माण करने के लिये अन्य देशों की तरह उन्हें भारत में भी भेजा।

भारत के धर्मगुरु वेटिकन की इस कुटिल चाल को अब जान चुके हैं और इसी लिये वेटिकन प्रमुख के धर्मगुरु के रूप में भारत आगमन का विरोध कर रहे हैं।

यदि वेटिकन चर्च के प्रमुख को भारत आना हो तो उन्हें भारत के धर्मगुरु वर्ग की अनुज्ञा लेनी चाहिये (जिस तरह औपचारिक यात्रा के लिये एक राज्य के राजनयिक दूसरे राज्य के राजनयिक की अनुज्ञा प्राप्त करते हैं)। इतना ही नहीं, उन्हें भारत के धर्मगुरु वर्ग को यह विश्वास दिलाना होगा कि वे इस देश के मानवों के

आध्यात्मिक विकास में सहायक होना चाहते हैं - इसके अलावा उनका कोई उद्देश्य नहीं है। इसके बाद ही वे भारत में धर्मगुरु के रूप में प्रवेश कर सकते हैं।

और उपरोक्त शर्तों के आधीन यदि वेटिकन के प्रमुख धर्मगुरु के रूप में पोप भारत आना चाहें तो भारत का धर्मगुरु वर्ग उन्हें यहाँ आने का निमंत्रण दे सकता है, भारत की राज्य सत्ता एसा निमंत्रण या एसी अनुज्ञा नहीं दे सकती। सेक्यूलर कहलाने वाली भारत की राज्य सत्ता अन्य प्रदेशों के धर्मगुरु को कैसे निमंत्रण दे सकती है ? उनका स्वागत भी कैसे कर सकती है ?

वेटिकन के प्रभाव में पूर्णतया गुलाम अंग्रेजी प्रेस पोप आगमन के समय हिन्दू संगठनों के विरोध को जिस नकारात्मक ढंग से रिपोर्ट कर रही है उसे चुप कराने के लिये उपरोक्त दलीलों के साथ हिन्दू संगठनों का प्रत्युत्तर प्रेस में आना चाहिये।

विश्वभर में वेटिकन चर्च की सत्ता स्थापित करने निकले

गोरों के काले कुकर्मों की कहानी

भारत में या एशिया - अफ्रिका के किसी भी प्रदेश में किसी ख्रिस्ती साध्वी के साथ में होने वाले दुर्व्यवहार का या किसी ख्रिस्ती धर्मप्रचारक के प्राण लेने की इक्का-दुक्का घटना घटे तो पश्चिम के प्रचार माध्यम तथा पश्चिम के राजनितिज्ञ और उनकी संस्थाएँ विश्वभर में हाहाकार मचा देते हैं।

परंतु जब जगत में एक ही धर्म और एक ही प्रजा का अस्तित्व टिकाने के लिये वेटिकन चर्च द्वारा शुरू किये गये कार्यक्रम के अंतर्गत एशिया, अफ्रिका आदि के प्रदेशों की कितनी ही जातियों के सामूहिक नाश के लिये ई. स. १४९२ से शुरू किये गये कार्यक्रम आज भी अमल में हैं, तब पश्चिम के ये प्रचार माध्यम और पश्चिम के राजद्वारी पुरुष मौन रखते हैं और ऐसे घातकी अत्याचारों को छुपाने का प्रयास करते हैं।

पश्चिम के राजद्वारी पुरुषों के गर्भित इशारों और आदेशों के अनुसार 'वर्ल्ड बैंक और आई. एम. एफ. जैसी आर्थिक संस्थाओं ने अश्वेत प्रजा के देशों में कैसा हाहाकार मचाया है उसका पर्दाफाश 'वर्ल्ड बैंक के ही एक गोरे अफसर ने किया है। डेवीसन बुद्धु नाम के इस वर्ल्ड बैंक के अफसर ने अपने त्यागपत्र में लिखा है कि;

“आज मैंने अंतरराष्ट्रीय वित्त कोष के स्टाफ के पद से १-२ साल की सेवा के बाद त्यागपत्र दिया है। उसमें से १००० दिन कोष के औपचारिक कार्य के लिये फील्ड में भी काम किया है। लेटिन अमेरिका, केरेबियन और अफ्रिका के देशों को तथा लोगों को तुम्हारे बताये हुये उपाय और तुम्हारे बताये हुये हथकंडे बेचे हैं। मेरे लिये यह त्यागपत्र एक अमूल्य मुक्ति है, क्योंकि इस त्यागपत्र के साथ मैंने उस नयी दिशा में कदम बढ़ाया है, जहाँ मैं करोड़ों गरीब और भूखे लोगों के खून से भरे मेरे हाथ धोने की आशा रखता हूँ। मि. केमडेसस, यह खून इतना सारा है, और आप भी यह जानते हो, कि इस खून की नदियाँ बह सकती हैं। यह खून सूख गया है, इसकी परत मेरे पूरे अस्तित्व पर जम गयी है। कितनी ही बार मुझे लगता है कि पूरे विश्व में जितना भी साबुन है वह भी मेरे पापों को धोने के लिये कम है। वे पाप, जो मैंने आपके नाम से किये हैं, आपके पहले के अधिकारियों के नाम से किये हैं, आपकी सील-महोर लगा कर किये हैं।”

पूरे विश्व पर अपनी सत्ता स्थापित करने के ध्येय से ई. स. १४९३ में वेटिकन द्वारा घोषित किये हुये 'बुल' (आदेश) के आधार पर कोलंबस के नेतृत्व में अमेरिका पहुँचे गोरों ने वहाँ की स्थानिक प्रजा - रेड इन्डियन - के ऊपर कैसे कैसे घातक जुल्म किये हैं, इसका विस्तृत वर्णन डेवीड स्टेनार्ड नामक लेखक ने उनकी पुस्तक "अमेरिकन हॉलोकास्ट" में किया है। इस जुल्मों के वर्णन पढ़ते रोयें काँप उठते हैं। क्रूरता भरा व्यवहार

करने में आनंद का अनुभव करने वाले, वैटिकन चर्च की सत्ता विश्वभर में स्थापित करने निकले इन गोरों के घातकी पराक्रमों के कुछ प्रसंग नीचे दिये हैं।

(१) स्पेनियार्ड रेड इन्डियन लोगों के हाथ इस तरह काटते थे कि कटा हुआ हाथ चमड़ी से लटकता रहे। वे लोग अपने हथियारों की धार की तीक्ष्णता जांचने के लिये पकड़े हुये रेड इन्डियन लोगों के पेट चीर देते थे और अपनी शारीरिक ताकात बताने के लिये एक ही वार में गर्दन उड़ाने की या शरीर के एक वार से दो टुकड़े करने की शर्त लगाते थे। रेड इन्डियनों के सरदार को जिन्दा जला दिया जाता था या तो उसे फांसी दी जाती थी।

(२) रेड इन्डियनों के समूह पर शिकारी कुत्ते छोड़े जाते, जो बच्चों को, स्त्रियों को, बूढ़ों वगैरह को फाड़ डालते थे।

(३) दूध पीते बच्चों को उनकी माँ की छाती पर से दोनों पैर पकडकर खींच लेते थे और उनके सिर पथरों पर पटक कर उनको मार दिया जाता था।

(४) वे लोग खड्डा खोडकर उसमें रेड इन्डियन बच्चों को स्त्रियों को, दूंस दूंस कर जीवित दबा देते थे और खड्डों में न समा सकने वालों को भालों से या कुत्तों द्वारा मरवा दिया जाता था।

(५) ताजा ही प्रसूता स्त्रियों के पास से ये ख्रिस्ती अपना सामान उठवाते थे जिससे कि वे अपने नवजात बच्चों को उठा न सकें और ऐसे कितने ही नवजात बच्चे रास्तों की दोनों और मरे हुये पाये जाते थे।

रोयें काँप उठे ऐसे क्रूरता भरे व्यवहारों के वर्णन से यह पुस्तक भरी पड़ी है। सोलहवीं सदी के अंत में वेस्ट इन्डिज, मेक्सिको और मध्य अमेरिका में ६ से ८ करोड़ लोग इस क्रूरता के शिकार होकर मर चुके थे। केवल पनामा के प्रदेश में ई. स. १५१४ से १५३० तक अर्थात् केवल १६ सालों में २० लाख लोगों की कत्ल की गयी थी और इस कत्लेआम का अंत अभी तक नहीं आया था।

एक और महत्वपूर्ण बात गौर करने लायक है कि भारत में घटित इक्का-दुक्का प्रसंगों के पीछे किसी धर्मगुरु की प्रेरणा या उकसाहट नहीं थी, परंतु जगत में अश्वेत / बिनख्रिस्ती प्रजा पर होते जुल्म, कत्ल, शोषण, अत्याचार वैटिकन के आदेश से, प्रेरणा से और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहायता से होते रहे हैं, जिस के असंख्य प्रमाण हैं।

ऐसे ही पराक्रम पोर्तुगीज गोरों ने पूर्वी देशों में किये हैं। क्या आज ऐसे कुकर्मों का अंत आ गया है ? नहीं, अश्वेत प्रजा का सफाया करने का कार्यक्रम आज भी चालू है। इन्टरनेट की वेबसाईट www.gmbeednat.mds/500 पृष्ठ से प्राप्त यह जानकारी पढ़िये;

“१९५०-१९५७ के बीच ब्राजिल की मूल प्रजा रबर की बढ़ती हुई खेती, कटते हुये जंगलों और बढ़ती हुये खानों के बीच १० लाख से घटकर २ लाख हो गई। १९६४ में अमेरिका, वर्ल्ड बैंक और आईएमएफ द्वारा प्रेरित राजकीय सत्ता पलट के बाद विदेशी पूंजी निवेश बढ़ा, लोगों की जमीनें छीनी गई, मूल प्रजा का नाश बढ़ता गया। मूल प्रजा पर बम विस्फोट हुये, उनके कत्लेआम हुये, उनके बीच इंजेक्शनों तथा रोग के किटाणु वाली कंबलों से महामारी फैलाई गयी। १९६० तक एक मूल जाति के १९००० में से (सन् १९३० में) मात्र १२०० लोग बचे। ऐसा ही कितनी ही अन्य जातियों के साथ हुआ। ऐसी ही एक जाति ‘तपाईयूनास’ तो भेंट दी गई आरसेनिक (जहर) युक्त शक्कर के उपयोग से संपूर्णरूप से नष्ट हो गयी।”

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इस देश में प्रवेश के सामने यदि प्रजा विरोध नहीं करेगी तो ब्राजिल की तरह इस देश में भी कत्ल चालू हो जायेंगे और जातियों की जातियों का सफाया कर देंगे।



अपत्य का अर्थ कहां ?

“इतने अधिक जिनालयों, मंदिरों, उपाश्रयों व उत्सवों के पीछे धन का अपव्यय करने के स्थान पर देवद्रव्य जैसे धार्मिक द्रव्यों को उद्योगों व कारखानों में लगा कर देश का विकास करना चाहिये।” यह कथन ६०-७० वर्ष पूर्व देशी ग्रेजुएटों का प्रिय गीत था। नेहरु युग में तो यह गीत मानो सप्तम स्वर में गाया गया था। आज भी शालाओं में भूगोल के विद्यार्थी भाखरा - नांगल व भिलाई - बोकारों के पाठ को “आधुनिक भारत के तीर्थ स्थान” के रूप में तोता रतन्त कर परीक्षा के लिये पुनरावृत्ति करते हैं। “डिस्कवरी ऑफ इन्डिया” में व्यक्त पंडितजी की अंतिम इच्छा के अनुसार गंगा यमुना जैसी नदियों में विसर्जित उनकी राख में से वे पुनः उठ खड़े हों, तो वे भी अब इस पाठ की पुनरावृत्ति का साहस नहीं कर पायेंगे। युग अब बदल चुका है। नेहरु आज जीवित होते तो भोपाल वाली घटना होने के बाद “टेम्पल्स ओर टोम्ब” के लेखक डेरिल डि‘मोन्टे द्वारा इन तथाकथित ‘मंदिरों’ को ‘कब्रिस्तान’ की संज्ञा देने पर सलामी ठोक देते।

औद्योगीकरण का यह भूत नेहरु के मनोमस्तिष्क पर इस बुरी तरह से सवार था कि वे तीर्थयात्रा पर जाने वाले लोगों को भाखरा-नांगल की ओर धकेल देते थे। तीन बत्ती, नवयुग निकेतन के श्री शांतिलाल मेहता ने स्वयं मुझे बताया कि वे स्वजनों के साथ सम्भेताशखरजी की धर्मयात्रा के लिये निकले थे। मार्ग में वे दिल्ली रुके। यात्रा हेतु निकले गान्धी दिल्ली पहुँचने पर प्रधानमंत्रीजी के साथ ग्रुप फोटो के लिये आतुर रहते थे। यह उस युग का फैशन था। फोटो सेशन में नेहरुजी को ज्ञात हुआ कि वे लोग शिखरजी की यात्रा के लिये निकले हैं। “सच्चे तीर्थ तो भाखरा नांगल हैं” कहकर श्री नेहरु ने अपने पी.ए. को आज्ञा देकर उनके लिये भाखरा नांगल जाने के लिए बस की व्यवस्था करवा दी। ऐसा प्रतीत हुआ कि उन यात्रियों को भाखरा नांगल की ओर जबरदस्ती धकेल दिया गया हो। यह प्रसंग टेक्नोलॉजिकल उन्नाद की परकाष्ठा का प्रमाण है। उसके पश्चात् तो गंगा में बहुत जल बह चुका है। इस प्रवाह के साथ अब तो नेहरु वी राख भी बंगाल के उप सागर के गहरे तल में जा पैठी है।

युग परिवर्तन के साथ इस गीत के गायकों ने भी ध्रुव पंक्ति को ही बदल दिया है। कारखानों के स्थान पर स्कूल, कॉलेज व अस्पताल शब्द रखकर उसी गीत को पुनः गतिमान किया है। “जब निर्धन भूख से मर रहे हों तो मंदिरों जिनालयों के लिये धन का अपव्यय का औचित्य ही क्या है ?” यह संपूर्ण चर्चा का सार है। मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि जब सम्पूर्ण संसार में भारत के शिल्प, स्थापत्य - कला का ध्वज लहरा रहा है तब पश्चिम की उबा देने वाली शैली की आग से जलते लाखों लोगों के हृदय में थोड़ी-देर शांति-अमृत का सिंचन करने वाले ये मंदिर क्या धन का अपव्यय है ? या हर वर्ष करोड़ों की कीमत के “रिअल बसरा मोती” का अरब देशों में निर्यात कर उसके बदले में पेट्रोल - प्रोडक्ट्स प्राप्त करना और उन्हें जलाकर धुआँ उडाना, यह धन का अपव्यय है ?

इन तुच्छ विचारों के मूल में छिछली प्रज्ञा है जो सारे विश्व की समस्याओं का समाधान “गटीरिअल वर्ल्ड” में ढुंढती है। ये लोग शोख चिल्ली चितन में रवे-पचे होते हैं। वे देव-द्रव्य व धर्मार्थ राशि को गरीबों में वितरण अथवा उसके उपयोग से स्कूल - अस्पताल खड़े करने में समस्याओं का समाधान मानते हैं। ऐसे लोगों को मूर्ख शिरोमणि कहने से यदि उन्हें बुरा लगता हो तो उन्हें “गलिबल” (भोले-भटके) कहना चाहिये। वे लोग सुख को अर्थ-काम के साथ, रूपया-रूप, कंचन-कामिनी या धन व तन के साथ इक्वेट करते हैं और दुख को अर्थ-काम के अभाव के साथ। उनकी मान्यता है कि वस्तु क्रय के लिये धन का अभाव ही दुख का कारण है। यदि यह सत्य होता तो चीज वस्तुओं के अंभार के मध्य जीवन जीने वाले धनिक सुखी ही होते और निर्धन मात्र दुखी। हम ऐसे धनिकों से भी परिचित हैं जो अरबों की सम्पत्ति के बीच में अपने दग्ध हृदय के साथ जी रहे हैं, जो नौद की गोली के बिना सो भी नहीं सकते। गांव के गोबर-पाटी से लिपे झोपड़ों में प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करते निर्धनों को भी आप जानते होंगे। सुख का यह समीकरण ही गलत है। इस भूल भरी अवधारणा के आधार पर खडा भवन गलत दिशा की ओर इंगित करता है। त्रिलोक गुरु परमात्मा महावीर से लेकर शंकराचार्य तक के तत्त्वदृष्टाओं के लिये “प्राणीनाम् आर्तिनाशनम्” एक मिशन था। उनकी पारदर्शी प्रज्ञा यह देखने में समर्थ थी कि दुख - दग्ध प्राणियों के दुख का नाश दो रूपये किलो अनाज विक्रय में अथवा भीख से भरे परदेशी वाहनों द्वारा लाये वस्त्र वितरण में नहीं है।

“दुख” नामक प्रश्न का आर्थिक परिमाण के उपरांत भी एक अन्य पहलू है। उसका नाम है - मानव मन की असीम इच्छाएं। इन इच्छाओं का उर्ध्वकरण न किया जाये तो ‘फॉर्च्यून’ पत्रिका के सर्वोच्च धनिकों ‘फाईव हंड्रेड’ की लिस्ट में द्वितीय क्रम पर आने वाला धनिक भी प्रथम क्रम पर आने की इच्छा में दुखी होने वाला ही है। इच्छाओं की गुलामी से अंश भर भी मुक्ति प्राप्त कर ले तो वॉयसराय के साथ मीटिंग में पोतडी पहन कर बैठा कोई अर्ध नम फकीर भी प्रसन्न रह सकता है। आर्थिक ऊपरी क्रियाओं के सतही परिवर्तन से संतुष्ट विकास - मॉडल और उसके समर्थक लोग इस मॉडल के आर्थिक परिणाम के अतिरिक्त एक अन्य सूक्ष्म परिणाम को देख नहीं सकते। एलोपेथी की गोलियाँ एसोडीटी मिटाने की सच्ची औषधि नहीं है। उसके लिये तो रोगी के आहार - विहार और मनोव्यापार में आमूल - चूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता होती है। दुख भी ऐसा ही है। मात्र रोटी कपडे और मकान मिल जाने मात्र से दुख दूर नहीं होता। धनवान या निर्धन किसी भी दुखी मानव की दृष्टि (दर्शन) के आगे पड़ा मिथ्या मान्यता का पर्दा झटक-पटक कर साफ करने से ही दुख दूर होता है। भौतिक जगत में ही दुख व दुख निवारण के उपाय ढूँढने में अभ्यस्त मानव को मन के भीतर झाँकना सीखकर स्वायत्त सुख के आनंद का उपभोग करने में सिद्धहस्त होना पड़ता है।

काँटे के चुपने के भय से सारी पृथ्वी को चमड़े से मढ देने की आज्ञा देने वाले राजा को बुद्धिमान मंत्री ने जूते पहनना सिखाया था। उसी तरह वर्तमान राजकुमारों की असीम इच्छाएँ दिन दूनी और रात चौगुनी गति से बढ़ती जा रही हैं। उन्हें इच्छा मृग - तृष्णा के बंधन से मुक्त करने के लिये फाईव स्टार होटल के एअर कण्डीशन्ड कान्फ्रेंस हॉल में प्रवचन या बाजारू पत्र पत्रिकाओं के कॉलम में प्रकाशित उपदेश काम नहीं आते। उनके लिये सर्वप्रथम स्वयं ही फकीरी चादर ओढ़ कर उदाहरण बन कर बताना पड़ता है। टेक्नोलॉजी इन्द्रजाल में अवस्थित माया नगरी के भ्रांत सुख में सुख की अनुभूति करने वालों को संतोष का पाठ पढ़ाना दुरुह कार्य है। उन्हें आपकी बुद्धिमता में विश्वास नहीं है। जब सारा संसार ‘हेव मोर’ कल्चर की ओर द्रुतगति से दौड़ रहा है तब ‘संतोषी’ माता की उपासना करने की कथा में वे उसी समय शामिल होने की सोचेंगे यदि कोई स्वयं उदाहरण बन कर उपस्थित हो। विश्वास की कसौटी पर खरा उतरने के लिये ‘रोल-मॉडल’ बनना पड़ता है। “सीइंग इज बिलिविंग”। इस चूहा दौड़ से यदि श्रीमंत व धीमंत हट जायें, तो यह ‘विथडाँअल’ अनेकों स्पर्धकों के लिये भक्का बन पुनः विचार का प्रेरणा स्रोत बन जायेगा।

परमात्मा महावीर से लेकर विविध दर्शनों के जनक राजघाट त्याग कर साधुता के चोले स्वीकार कर लेते थे। इस अभिगम के पीछे ये ही कारण विद्यमान थे। ऐसे क्रांतिदर्शी मनीषियों के निर्वाण के पश्चात् उनका व उनके मूलभूत संदेशों का स्मरण-कार्य उनकी आकृति चित्र या मूर्तियाँ कराती हैं। जिनालयों व मंदिरों का यही महत्त्व है। सामान्य ज्वर में भी जहरी मलेरिया की गलत रिपोर्ट देने वाला कमीशन लालची पैथोलोजिस्ट अथवा ब्लू फिल्म की केसेट किराये पर देकर पेट-पालने वाला केवल टी.वी. वाला, चाहे एक रूटिन रिवाज का अनुसरण कर दर्शनार्थ मंदिर चला जाता है। भाग्यवश किसी दिन उसे अपने इष्टदेव की मूर्ति के पृष्ठ-में-उपरिष्ठ उस विराट व्यक्तित्व की आभा की याद आ जाती है। उस निर्मल व्यक्तित्व के दर्पण-में-उसे अपने अपकृत्यों के दाग दिखाई दे जाते हैं। वहीं उसके जीवन में परिवर्तन की संभावना प्रकट हो जाती है।

कुएँ के जिस मंडक को रूतल भौतिक जगत के पार कुछ भी दिखाई नहीं देता, ऐसे लोगों के लिये तो मंदिर-जिनालयों के लिये किया गया व्यय धन का धूआधार अपव्यय मात्र ही है, पर जिन्हें मानव के मनोजगत में घर बना बैठी विसंगतियों में वैश्विक समस्याओं का एक विशिष्ट परिवल दिखाई देता है उनकी दृष्टि में मंदिर व जिनालय मानस चिकित्सालय (ओटोटीटीमेन्ट सेन्टर) ही प्रतीत होते हैं। चरखा बारस (गांधीजी के जन्मदिन) के दिन यदि किसी-किसी को राजघाट की समाधि अथवा आश्रम रोड के मध्य खड़ी गांधी-मूर्ति, गांधीजी के जौवन और संदेश की याद ताजी करने का निमित्त बन सकती है, तो जगत पूज्य महावीर अथवा कृष्ण मंदिर के लिये भिन्न मापदण्ड क्यों ? कितने ही ले भागू राजनीतिज्ञों ने तो बापू की समाधि पर चढ़ाये जाने वाले पुष्पहारों को अपनी दुर्गन्ध भरी भ्रष्टता को ढकने का साधन बना लिया है। दोष उन ले-भागूओं का है, न कि गांधी समाधि, अर्पित पुष्पहार और बापू की प्रतिमा का।

कई ले-भागू भक्त मंदिरों में पूजा, दर्शन और कपाल पर टीके-तिलक कर उसकी ओट में सब प्रकार के अपकृत्यों के आचरण भी करते होंगे। लेकिन उनके पापों के लिये मंदिरों और मूर्तियों पर शब्द-चाबुक के प्रहार तो ‘मंदिर-मूर्ति-दर्शन’ नामक एक उदात्त साइको-आध्यात्मिक अनुसंधान के प्रति घोर अन्याय होगा। किसी भी व्यक्ति का रूप (चित्र, आकृति, मूर्ति आदि) उस नाम व रूप के साथ संबंधित सभी घटनाचक्रों को श्रोता या दर्शक की स्मृति में साकार कर देते

हैं। बाजारू हिन्दी फिल्म की अभिनेत्री का नाम व रूप श्रोता-दर्शक के मन में एक विशेष प्रकार की कृति को जागृत करता है, उसी तरह लोकोत्तम महापुरुषों के नाम-रूप का प्रभाव भी होता है। पूरा देश सतत एम.टी.वी. और झॉ.टी.वी. पर अश्लील शब्दों व दृश्यों का श्रवण-दर्शन करता रहे तो समाज का क्या होगा, हम सबको उसके परिणाम का व्यक्तिगत अनुभव है। इस प्रक्रिया को परिवर्तित करना हो और संस्कारी प्रजा का निर्माण करना हो तो उसके आँख-कान और हृदय को एक भिन्न स्तर के नाम-रूप का स्पर्श होता रहे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। गाँव-गाँव में खड़े देवालय ऐसे ही प्रयत्न के अंग हैं।

परन्तु देश की सर्वोत्तम स्वर साम्राजियों के मुख से गाये जाते भ्रामक गीत या करोड़ों डॉलर के व्यय से बने डिजनीलेण्ड या करोड़ों रुपयों के व्यय से बने एसेल वर्ल्ड जैसे उपभोक्ता संस्कृति के प्रतीकों से लोगों को लौटा लाना सरल कार्य नहीं है। यदि देवालय और मूर्तियाँ अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह के स्वर को सबल करने वाले लोकनेतर महापुरुषों के प्रतीक हैं, तो हिल स्टेशनों के पंचतारा होटल उपभोग प्रधान संस्कृति के प्रतीक हैं। प्रतीकों से अधिक महत्ता तो दोनों विचारधाराओं की है। समग्र विश्व में संतोष की परम्परागत पूरव की संस्कृति और रक्त प्यासी यश्रिणी (जर्मन विचारक वुल्फगांग के अनुसार) पश्चिमी संस्कृति के मध्य खूँखार युद्ध चल रहा हो तो हमें किस जीवनशैली और उसके प्रतीकों के पृष्ठ में खड़ा रहना चाहिये, उसका निश्चय कर लेना चाहिए। मंदिर जाने के पश्चात् भी कई व्यक्ति अहिंसा व अपरिग्रह का आदर्श नहीं सीख पाते हैं, तो “धेट इज नोट बिकोज ऑफ हिज गोइंग टु टेंपल, धेट इज इनस्टाईट ऑफ हीज गोइंग टु टेंपल।” जब विदेशी जैनल देखकर समग्र समाज भेड़िये की तरह भूख-लोलुप बन जाता हो तो “धेट इज बिकोज ऑफ हिज सीइंग ध चैनल्स”। यह अंतर अवश्य समझ लेना होगा।

अपने चिंतन में अंतर्निहित ऐसे “सेल्फकोन्ट्रैडिक्शंस” को मरखने और उनसे ऊपर उठने की कला भी हमें सीखनी पड़ेगी। एक ओर हम कहते हैं कि मेकॉले की शिक्षा पद्धति को हनुमान - भक्ति की तरह संभाल कर बैठे स्कूल-कालेजों ने देश का सत्यानाश कर दिया है, और दूसरी ओर उसी श्वास में मंदिर के बदले स्कूल-कालेजों में धन व्यय करने की प्रेरणा भी देते हैं। ऐसा लगता है कि इतने सत्यानाश से हम संतुष्ट न हो पाये हैं। एलोपैथी की चिकित्सा ने जितने रोगों को मिटाया है उससे भी कई अधिक गुना रोगों को जन्म दिया है, एसी शिक्षागत हम करते हैं तथा दूसरी ओर इन रोगोत्पादक फेक्ट्रियों को खड़ा करने में हम जनसेवा मानते हैं। इन अंतर - विरोधों को कौन सामने लायेगा ?

गुजरात के शिक्षा जगत की प्रसिद्ध शिक्षाविद श्रीमती इंदुमती बहन काटदरे से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय उनसे एक सरस चर्चा हुई थी। उनके ही शब्दों में - “अधिकतर लोग शिकायत करते हैं कि आजकल स्कूलों व कॉलेजों में अनुशासन नहीं है, भ्रष्टाचार और अनुचित रीतियाँ प्रचलित हैं। शिक्षक गंभीरता से पढ़ाते नहीं हैं और विद्यार्थी पढ़ते नहीं हैं”। मुझे तो प्रतीत होता है कि यही श्रेयस्कर है। कोई निष्ठापूर्वक पढ़ता नहीं है और न कोई पढ़ाता है। यदि पूर्णतया सड़ी-गली शिक्षा को सब गंभीरता से पढ़ते और पढ़ाते होते तो देश बहुत पहले ही रसातल में चला गया होता।

करोड़ों रुपयों के व्यय से संगमरमर से बनी एलोपैथिक अस्पताल का निर्माण प्रभुसेवा है या मानव की सबसे बड़ी कुसेवा है, उसका निर्णय करने के लिये कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ लेना पर्याप्त होगा। इस लेखक ने संपूर्ण एलोपैथी पद्धति का सारांश इस पुस्तक के टाईटल में ही समाहित कर दिया है। इस पुस्तक का शीर्षक है - “डुइंग बेटर एंड फीलिंग वर्स”। मैकॉल की शिक्षा और एलोपैथी की चिकित्सा के सौ-डेढ़ सौ वर्षों का विश्लेषण, विशाल हानि का हिसाब प्रस्तुत करता है। लौंग की लकड़ी को धीरे-धीरे धपथपाने से श्रेयस्कर तो उसे निःसंकोच कचरे की टोकरी में ही फेंक देना चाहिये। कचरे की टोकरी के योग्य कॉलेज-अस्पतालों में देव-द्रव्य के उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। विचारक तो यहां तक कहते हैं कि ऐसी घातक शिक्षा व चिकित्सा पद्धति के प्रोत्साहन के लिये धन का व्यय करने के बदले उसे अरव-सागर में विसर्जित करना श्रेष्ठ है। धन व्यर्थ ही जायेगा, विवाद व हानि तो पैदा नहीं करेगा।

गाँव-गाँव में साक्षरता अभियान चलाते भोले भामा साक्षरता को शिक्षा के साथ इक्वेट करते हैं। वे मानते हैं कि अक्षर ज्ञान कर लेने मात्र से व्यक्ति साक्षर हो जाता है। उन्हें ज्ञात नहीं है कि “एज्युकेशन इज मच मोर धेन लिटरेसी” पंटागोन में बैठे-बैठे ही पृथ्वी को सात सौ बार मानवरहित बनाया जा सके, ऐसे शास्त्रों की निरन्तर खोज कर रहे वैज्ञानिक हार्वर्ड के पी.एच.डी. तो हो सकते हैं, किंतु वे साक्षर नहीं अपितु राक्षस कहे जा सकते हैं। समग्र जीवसृष्टि के साथ

तादात्म्य से जीने का बोध ही सच्ची शिक्षा है, तो इस प्रकार की शिक्षा देने वाले मंदिर व धर्मस्थान वया वास्तविक अर्थ में शिक्षण संस्था या विश्वविद्यालय नहीं है ? तेजस्वी साधु-सन्नासियों के व्याख्यान, प्रवचन से प्रदत्त संस्कार अर्पण "एप्साइड नॉलेज" है। स्कूल-मास्टर तो जगदीशचन्द्र बंसु के हवाले से वनस्पति में जीवन प्रमाणित करके अटक जाता है। फलतः प्रयोगशाला में वनस्पति की सजीवता को प्रमाणित करके निकला बालक शाला परिसर के नव अंकुरों के पत्ते तोड़ता घर पहुँच जाता है। उपाश्रयों की कोचिंग क्लास (व्याख्यान) का श्रोता साधु उनसे कई कदम आगे रहता है। वे भगवान महावीर के दर्शन की वनस्पति में प्राण होने की चर्चा करके ही इतिश्री नहीं करते। वनस्पति में अपने जैसा ही जीव विद्यमान है तो उसे पीड़ा पहुँचाने से यथासंभव बचने का उपदेश स्वयं ही ग्रहण कर लेते हैं। ये साधु इन उपदेशों को आत्मसात् कर उन पर चर्चा करते हैं तो श्रोताओं की रिसेप्टिविटी बढ़ जाती है। उनके व्याख्यानों को सुनकर आने वाला श्रोता घास पर चलने के बदले संभल-संभल कर पगडंडियों पर चलना सीख जाता है। स्कूल, कॉलेज, लेक्चर पीरियड को प्रगतिशीलता का नाम दिया जाता है। उपाश्रय-पाठशाला, व्याख्यान-प्रवचन को रूढिचुस्तता कहा जाता है। छोड़ (अंकुर) में रहे रणछोड़ (आत्मा) की बात करने वाले पाण्डुरंगशास्त्री ने जितने लोगों को वृक्षों का विनाश करने से रोका है, उतने लोगों को गुजरात के अठारह हजार स्कूलों के अध्यापक भी नहीं रोक पाये हैं।

व्योरेटिव कार्य में ही जीवन पूरा करने वाले धनगत भूषणों को प्रिवेन्टिव कार्यों की महत्ता समझना कठिन है। प्रिवेन्टिव कार्य इनविजिबल (अदृश्य) होता है। इनमें फोड़ा पैदा करके उसको चीरने के बदले फोड़ा होने से रोकने जैसी भावना होती है। ईसाई निरानरियों के अनाथाश्रम व वृद्धाश्रम की प्रशस्ति के गीत गाने वालों को कौन समझाये कि प्राचीन काल से "मातृदेवो भवः", "पितृदेवो भवः" के संस्कार-दाता संतों के पुण्य प्रभाव से भारत के घर-घर में वृद्धों का अपना प्रिय घर था। वहाँ तो वृद्ध पशुओं को भी माँ-बाप की तरह संभाल कर रखने की प्रथा थी। अतः वृद्धजनों के लिये वृद्धाश्रमों की आवश्यकता कहाँ थी ? इन तथाकथित ओल्ड एज होमों की आवश्यकता तो उन स्थानों पर होती है जहाँ माँ-बाप को पशुओं की तरह ट्रीट करते हैं।

भोग सुखों की संपूर्ण मर्यादा त्यागने के फलस्वरूप उत्पन्न बालकों को रास्ते में भटकना छोड़ने के कारण इस प्रकार का समाज पैदा हो रहा है। उनके पोषण के लिये अनाथाश्रम खोले जा रहे हैं। क्या ये अनाथाश्रम स्वस्थ समाज के लक्षण हैं या शील, सदाचार, व पवित्रता के संस्कार घुट्टी में पिलाकर सहज संयम द्वारा अनाथ बालकों की उत्पात्ति रोकने वाले धर्मस्थान स्वस्थ समाज के लक्षण हैं ?

कहा जाता है कि संसार के आधे लोग पर्याप्त भोजन के अभाव में मरते हैं, और शेष आधे अधिक भोजन के कारण। इस कथन की गहराई तक जायें तो कहना पड़ेगा कि परंपरागत धर्मस्थान मानस परिवर्तन द्वारा भोजन भट्टों के आहार संबंधी अतिभोगों को अंकुश में लाने हेतु प्रिवेन्टिव मेडिसिन के कार्यरत हेल्थ-सेंटर है। हीरा-वाजार के बड़े व्यापारियों द्वारा निर्मित बान्द्रा के अस्पताल के शिलारोपण के प्रसंग पर श्री विजय मर्नन्ट ने कहा था कि जब तक लोगों के खान-पान की आदतें बदलने में नहीं आती, तब तक बान्द्रा से नरिमान घ्वाइन्ट के मार्ग पर दोनों ओर इस प्रकार के अस्पतालों की कतार खड़ी करने पर भी आवश्यकता पूर्ति के लिये पर्याप्त नहीं होगी। सुविज्ञ वाचक जानते हैं कि सच्चे धर्मगुरुओं के उपदेश में खाने के लिये जीने के बदले स्वयं अपने और जगत की भलाई के लिये जीने और जीने के लिये खाने की बात निश्चित रूप से मान्य है। अस्पताल खड़े करने के तथाकथित रचनात्मक कार्य के बदले अस्पतालों में रोगियों की भरपूर सफाया करने वाले जंक-फूड के क्रेज की गति में स्पीड-ब्रेकर्स खड़े करने का कथित खण्डनात्मक कार्य अधिक महत्वपूर्ण है। धर्मस्थानों द्वारा घोषित निषेधों के परिणामस्वरूप परंपरागत धर्मियों के रसोईघर आज भी जंक-फूड के प्रवेश के लिये अभेद्य दुर्ग बने हुए हैं।

आरोग्य के तीन आधार स्तम्भों के रूप में आयुर्वेद, आहार-विहार के पश्चात् मनोव्यापार को भी प्रस्तुत करता है। विदेशी अस्पताल स्ट्रेस, टेन्शन, डिप्रेशन जैसे शुद्ध मानसिक और हार्टएटेक, ब्लडप्रेसर जैसे दूषित मनोव्यापार जनित रोगों से उफन रहे हैं। जीवन मुक्त आत्मा की शुद्ध अवस्था की प्राप्ति के लिये एक साधन के रूप में देवालयों को देखने की सूक्ष्म प्रज्ञा तो समकालीन युग में विरल हो गई है। जिनालयों के बदले अस्पतालों के निर्माण का भोंपू बजाने वाले ये भी नहीं देख पाते कि सुबह-शाम मंदिर में व्यतीत पांच-पन्द्रह मिनिट सामान्य मनुष्य के उबाऊ रात-दिन के दो डिव्यों के बीच वफर का कार्य कर अस्पतालों की भीड़ कम रखते हैं।

कोस्ट बेनिफिट के एनेलेसिस मात्र रूपये, आने, पाई में गिनकर देहरासर के निर्माण की आज्ञा तो भगवान महावीर भी प्रदान नहीं करते। उनके शास्त्रों का स्पष्ट आदेश है कि मंदिर निर्माण के समय मनुष्य या पशु तो क्या छोटे से छोटे कौट से लेकर वनस्पति तक की यथासंभव जयणा होनी चाहिये। मंदिर के लिये जमीन क्रय से लेकर प्रतिष्ठा का कलश चढ़ने तक, जमीन के स्वामी से लेकर श्रमिक तक का किसी प्रकार से शोषण न हो, उसका पूर्ण ध्यान रखने का आदेश है। मंदिर निर्माण से संबंधित सब लोगों को प्रसन्न रखने के सभी उचित उपाय धर्म शास्त्र में 'मस्त' हैं। महा-आमात्य विमल शाह गुजरात के सर्वेसर्वा होने के नाते जमीन अधिग्रहित भी कर लेते, पर उन्होंने आवू की जमीन प्राप्त करने के लिये रोकड़ धन राशि देकर, कीमत की अनुचित माँग को भी स्वीकार किया। तत्कालीन राजतंत्र के गोल सिक्के जमीन पर बिछाने पर दो सिक्कों के बीच की जमीन मुफ्त में ही ले ली जायेगी एसा मानकर अधर्म से वचने के लिये अपनी टकसाल में विशेष चौकोर सिक्कों का निर्माण कराया। उन्हें जमीन पर बिछाकर जमीन प्राप्त करने की प्रामाणिकता की किंवदन्ती इतिहास के पृष्ठों में अंकित कराई। वस्तुपाल-तेजपाल की कथा तो शायद पुरानी प्रतीत हो, अभी हाल में ही मोतीशाह शेठने भायखला के विख्यात जैन मंदिर का निर्माण कराया उस समय उसका निर्माण करने वाले महुआ के रामजी सलाट को प्राण-प्रतिष्ठा के प्रसंग पर टोकरी भरकर सोने के आभूषण दिये। बाप-दादाओं का ऋण चुकाने के लिये रामजी ने ये आभूषण बेच दिये। उसकी जानकारी होते ही शेठ ने सलाट को बुलाकर उलाहना देते हुए कहा कि 'मैंने ये आभूषण तुम्हें पहनने के लिये दिये थे, बेचने के लिये नहीं। कर्ज था तो मुझे कहते।' इतना कहकर उन्होंने मुनिम को दूसरी टोकरी भरकर आभूषण देने का आदेश दिया।

किसी भी धर्मस्थान निर्माण और धर्मअनुष्ठान सम्पन्न कराने में जैन लोग जयणा पालन को अनिवार्य अंग मानते हैं। इसलिये वे छोटे-बड़े जीवों की हत्या होती हो ऐसे विशालकाय यंत्रों के उपयोग को भी वर्जित मानते हैं। उनका मंदिर निर्माण लेबर (हयुमन एज वेल एज एनिमल) इन्टेन्सिव हो जाता है। उन तथ्यों को ध्यान में रखकर सोचें कि यदि दस करोड़ रूपयों के खर्च से भी जिनालय विधिपूर्वक बने तो ये दस करोड़ विभिन्न स्तरों पर मजदूरी के रूप में गरीब कारीगरों व पशुओं के पेट में पहुँचते हैं। और शिल्प स्थापत्य के अनुगम नमूने जैसा मंदिर बोनस रूप में बन जाता है। हर दूसरे वर्ष अकाल में रोजी देने का व्यर्थ प्रयास करती सरकार धन का धुँआ उड़ाती है, या मंदिर निर्माण में प्रयुक्त अर्बों रूपयों की राशि, जिसकी पाई-पाई गरीब सलाट श्रमिकों को काम देकर मानपूर्वक उनकी जेब तक पहुँचाने वाले भवत धन का अपव्यय करते हैं, उसका निर्णय करना बहुत ही सरल है।

पश्चिम का वैचारिक सार्वभौमत्व (हेजीमनी आफ थॉट) नस नस में इस सीमा तक पहुँच गया है कि कोई भी विचार, शब्द या प्रकृत युरोपियन या अमेरिकन वेश-भूषा पहनकर प्रस्तुत हो तो सुंदर, रूपवती लगने लगती है। भारतीय परिवेश में ये ही प्रवृत्तियाँ जंगली, पिछड़ी हुई, 'आर्थोडक्स', रूढिचुस्त प्रतीत होती हैं। भारतीय शिल्प-स्थापत्य कला के रक्षण, संवर्धन के लिये इन्स्टीटयुट या म्युजियम निर्माण के लिये करोड़ों का व्यय करें तो "अहो-अहो" का नाद सर्वत्र गूँज उठेगा, क्योंकि ऐसे म्युजियम-इन्स्टीटयुट्स तो ब्रिटिश लिगेसी है। देशभर में बनते मंदिर जीवन के उदात्त मूल्यों को लोकजीवन में टिकाये रखने के साथ-साथ 'साइड बाय साइड' शिल्प स्थापत्य कला को 'प्रेक्टिकल इम्प्लीमेंटेशन' द्वारा टिकाये रखने का काम करते हैं, तो दुर्ब्य है, क्योंकि यह भारतीय पद्धति है ! अजागृत मन में घुसी हुई वैचारिक विकृतियाँ दूर न होगी तब तक इन दोहरे मानकों को दूर करना संभव नहीं होगा।

यदि गांधी द्वारा प्रज्वलित जीवन मूल्य प्रस्तुत व उपयोगी है और गांधीजी का पुतला सभी को इन जीवन मूल्यों की याद कराने का निमित्त बनने में कारणभूत हो जाये तो उस पुतले के निर्माण के लिये किया गया व्यय वसूल माना जायेगा। उसी प्रकार से लोकोत्तम तीर्थकरों व राम-कृष्ण के जीवन मूल्य प्रस्तुत व हितकारी हों तो उन जीवन मूल्यों को स्मृत पथ पर लाने के निमित्त रूप बनती मूर्तियाँ या मंदिरों की ओर अधिक से अधिक लोगों को लाने हेतु उन्हें आकर्षक स्वरूप देने हेतु प्रयुक्त धन भी उपयोगी ही है।

कोई यह मान लेने की भूल जरा भी न करें कि मूर्ति के दर्शन या मंदिर जाने मात्र से किसी का जीवन परिवर्तित हो जाता है। इस बात में कोई तथ्य नहीं है। परंपरा से बिलुडे पढ़े-लिखे लोगों को श्रेष्ठ पुस्तकों का वाचन जिस तरह हिला-देता है, उसी तरह परंपरा से जुड़ा विशाल जनसमाज रोज नहीं तो कभी-कभी मंदिर या मूर्ति से नये-नये स्वप्न प्राप्त कर लौटता है। भगवान की मूर्ति में साक्षात् भगवान का निरूपण कर उनमें ही खो जाने वाले माण्डवगढ़ के महा-आमात्य या कृष्ण दिवानी मीरा की बातें जिन्हे मात्र दंतकथा प्रतीत होती हों, उन्हें भी भगवान के नहीं तो भक्तों

के दर्शन के लिये ही कभी-कभी मंदिर का चक्कर मारना चाहिए। आसपास की दुनिया को भूल कर पलकों के बांध छलकर कर बहते आँसू की धार के दर्शन उन्हें इस बात की प्रतीति करायेगे। अत्यंत वस्त्रों में उच्छृंखलता का प्रदर्शन करती अभिनेत्री का फोटो विकृत मनोभाव पैदा कर सकता है, तो प्रशंसा-संगीत-वीतराग की मूर्ति दर्शक के भाव जगत को अवश्य ही आंदोलित कर सकेगी। यदि व्यक्ति पर उनके दर्शन का कोई 'एम्पेक्ट' न होता हो तो डाक टिकटों पर तथाकथित महापुरुषों के फोटो छपवाने से लेकर शाला-कॉलेज व सरकारी कचहरियों में गांधी, नेहरू, सुभाष, सरदार, विवेकानंद के फोटो लगाने या चौराहे पर देश-नेताओं के पुतले खड़े करवाने का द्राविड-व्यायाम भी बंद कर देना चाहिए। त्रिलोकगुरु तीर्थकरों से लेकर राम-कृष्ण तक व्यक्ति विशेष के आदर्श कनराटोकरों के योग्य नहीं हैं। उनकी मूर्ति उन आदर्शों के अंगारों पर छाई राख को हटाने में समर्थ हैं। तो ऐसी मूर्तियों, मंदिरों को उचित स्थान पर बनवाना, उनकी ओर अधिक से अधिक लोगों को आकर्षित करने के लिये सर्वोत्तम कला-कारीगरी से अलंकृत करना, उसके लिये धन-व्यय करना और यह धन-पूँजी तथाकथित लोक-कल्याण कार्यों में नष्ट न हो जाये उसका भी ख्याल रखना सुजनों का धर्म बन जाता है।

धर्मस्थानों में प्रविष्ट विकृतियों की आँड़ लेकर इन संस्थाओं, उसके संचालकों, धर्मगुरुओं, इन संस्थाओं की हितपूर्ति का द्रव्य और इन संस्थाओं के विधान स्वरूप धर्म शास्त्रों की प्रताड़ना करने में कई लोगों को आनंद आता है। अंग्रेजी में 'फेवरीट व्हीपिंग ब्याच' नामक एक शब्द समूह का प्रयोग होता है। गुजराती में भी 'हलका लहू हवासादार का' एक कहावत है।

मूल्यों के हास के संकट की चर्चा रहने दें। यदि मात्र आर्थिक समस्याओं को ही स्पर्श करें, तो उसके मूल में पैकॉले की शिक्षा, भौतिक सुखलक्षी विज्ञान और यंत्रवाद के उन्माद की त्रिपुटी है। गरीबी का कारण देवालय भंडारों का संग्रहित धन नहीं है, पर व्यापक बेकारी है। बेकारी के उत्पादक मंदिर नहीं अपितु कारखाने हैं, 'विकास' व प्रगति के नाम पर प्राणी व्यापार करने वारतों के स्थापित हित संपूर्ण देश को मल्टीनेशनल कंपनियों के खाते में गिरवी रखने के काले करतूत करते हैं। यह विकास की निर्लज्ज और धृष्ट विभावना पूरे देश को धारावी की झोंपडपट्टी में परिवर्तित कर देती है। 'विकास' की यह रक्त प्यासा यक्षिणी (इंधुवुला) समग्र देश को अस्थि-कंकाल में बदल देती है। तब इस भयानक 'जेनोसाईड' के अपराध का टांकसा किसी न किसी के गले पहनाने के लिये 'स्केप गोट' (बलि के बकरे) की खोज अनिवार्य हो जाती है। मंदिर, मूर्तियाँ, देव-द्रव्य, धर्मगुरु जैसे निर-उपद्रवी निकटस्थ बकरे अन्यत्र कहां मिलते? जहां तक इस 'विकास' की चुडैल के पंजे से मुक्ति नहीं मिलती, वहां तक देश के समस्त धर्मस्थानों की संपत्ति गरीबों में बांट दी जाये तो भी गरीबी दूर नहीं हो पायेगी। गरीबी के मूल कारण कुछ और ही हैं। जहाज में हुए छिद्र को बंद किये बिना जहाज में भरे पानी को उलेचने के लिये बहाया पसीना, जहाज को डूबने से बचा नहीं सकता।

वास्तव में मंदिर, देवालय, व धर्मस्थानों का निर्माण स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, अनाथाश्रम और वृद्धों के आवास की, और उनमें लगे कारीगरों की रोजी-रोटी की पूर्ति जैसे उद्देश्यों के लिये नहीं होता। उसका आशय तो उन सब समस्याओं के मूल में स्थित ब्रह्म जगत-को संतुलित करना है। फिर भी इसकी रचना में ऐसी विशेषता है कि एक मल्टीपरपज़ प्रोजेक्ट के बाय प्रोडक्ट की तरह उपर्युक्त सभी कार्यों में भी सहायक होते हैं। जो स्कूल, कॉलेज, अस्पताल और उद्योगों की वकालत करते हैं, वे स्वयं अपने सीमित उद्देश्य पूरे करने में भी पूर्णतया निष्फल रहे हैं। हम अर्थ का अपव्यय किसे कहें? मंदिर-व देवालयों को? या स्कूल व कॉलेजों, अस्पतालों व फेक्ट्रियों को?

परमपूज्य मुनिराज श्री हितरुचि विजयजी महाराज साहब के मूल गुजराती
निबंध "छलजो घुमाडो कयां छे?" का हिन्दी अनुवाद

अनुवाद: श्री मनोहरलालजी सिंधी
सिरोही (राजस्थान)

संपर्क :
विनियोग परिवार
बी/२ - १०४, वैभव अपार्टमेंट,
जांबली गली, बोरीवली (पश्चिम), मुंबई-९२.
टेली : ८०२०७४९ / ८०७७७८९

“फर्टिलाइज़र सबसीडी: धीमा सीटा जहर”

पत्र-पत्रिकाओं के संपादक अपने संपादकीय लेखों में फर्टिलाइज़र पर देय सबसीडी को “कुपात्रदान” कहकर इस तरह की सभी सबसीडी को तुरंत बंद करने का अनुरोध एक खर में करें अथवा विश्वभर के पर्यावरणवादी हरितक्रांति की जिम्मेदार कृत्रिम खाद से बांझ बन रही भूमि के संबंध में चेतावनी के साथरन बजाने के लिये सिर पटक-पटक कर मर जायें तो भी सबसीडी समाप्त करने की बात तो दूर रही, पर शर्म हया बिना, बेहिचक सबसीडी की वृद्धि की सरकारी घोषणा निरन्तर गतिशील है। यह स्थिति हमारी स्वीकृत कल्याण राज्य की विभावना में विद्यमान अनेकों मूलभूत क्षतियों की ओर अंगुली-निर्देश करती है। फर्टिलाइज़रों के रूप में भूमि को दवा के अधिक “डोज़” देकर उससे अधिकतम कार्य-अधिकतम उत्पादन लेने का लोभ-सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी जैसी फलद्रुप भूमि को स्मशान बनाकर समाप्त करने का आत्मघाती प्रयास मात्र है। ऐसी सीधी-सादी बात को पत्र का संपादक अथवा अतुल शाह समझ सकता है तो मधु दण्डवते (तत्कालीन वित्तमंत्री) या अन्य मंत्रियों के दिगाग में न उतरे यह संभव नहीं है।

भारतव में १९४७ के पश्चात जीवन के हर क्षेत्र की तरह राज्य व्यवस्था में भी नेहरू, उनकी मंडली व अनुयायियों ने विदेशी “बेस्टमिन्स्टर मॉडल” सांगोपांग स्वीकार कर लिया है। जिसके पाप से चुनाव में बहुमत प्राप्त करने के लिये कुछ लोगों को प्रसन्न रखने के जन-रंजनात्मक ध्येय ने वी. पी. व दण्डवते जैसे प्रामाणिक व निष्ठावान गिने जाने वाले राजनीतिज्ञों को भी पोप्युलरिस्ट - पोलिटिक्स (लोकप्रियता के राजकारण) की निकृष्ट नीतियाँ ग्रहण करने के लिये विवश किया है। प्रजा का वास्तविक कल्याण चाहने वाले जागरूक विचारक ऐसे समय में उन्हें दो-चार गालियाँ देकर अथवा इधर-उधर थोड़ी धमाचौकड़ी मचाकर बैठे रहने में आत्मसंतोष का अनुभव करने के बजाय पश्चिम-चक्षु नेहरू के वेल्फेयर स्टेट, जिसे विनोबा अपनी व्यंग्यात्मक शैली में “इलफेयर स्टेट” कहते थे - की उधार ली हुई विषकन्या को अरब सागर में विसर्जित करनी होगी। पर जब तक लोकशाही, बहुमतवाद, चुनाव-प्रथा जैसी इन विषकन्याओं को पवित्र गाय मानकर उन्हें छूने में भी पाप मानने वाले और इस लौह चौकट में कैद, इधर-उधर पैदल लगाकर कृत-कृत्यता का अनुभव करने वाले लल्लू लालाओं का पत्रकारिता से लेकर समाजसेवा के सभी क्षेत्रों में वर्चस्व है, वहां तक तो परिवर्तन निकट भविष्य में संभव प्रतीत नहीं होता। फलस्वरूप स्वतः स्वीकृत राष्ट्रीय बेहाली को जो न देख पा रहे हैं ऐसे विचारकों को तो इन परिस्थितियों में जब भी अवसर प्राप्त हो तब वित्तमंत्री अथवा प्रधानमंत्री पर चारों ओर से विचारों का निरन्तर आक्रमण करना चाहिये। कड़वी दवा पिलाने के कर्तव्य से च्युत पिता कु-पिता बने तो औलाद उन्हें कड़वी दवा के लाभों को बताकर ऐसी दवा पिलाने के लिये विवश कर सकती है।

आगे फर्टिलाइज़र की चर्चा करें। सबसीडी और सरकारी प्रचार के प्रचण्ड पाप से इस देश में सन् १९६१ में ५३००० टन व २१००० टन की अल्पमात्रा में उपयोग में आ रहे फोस्फेटिक व नाइट्रोजन फर्टिलाइज़रों का प्रयोग २७ वर्ष में बढ़कर सन् १९८७-८८ में क्रमशः २२,५९,००० टन व ५८,३६,००० टन के भयजनक स्तर पर पहुँच गया है। दुर्भाग्य तो यह है कि मेकॉले के समय से प्रगति के भ्रामक चित्रन में प्रसन्न-मग्न अपना गूर्ख शिक्षा विभाग अपने पाठ्यक्रमों में इसे प्रगति का मापदंड कहकर गर्व करता है, जबकि संपूर्ण विश्व के बुद्धिजीवी फर्टिलाइज़र के इस बढ़ते हुए उपयोग को भय व चिंता की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रगति (!) के फलस्वरूप हमारे देश की कृषि भूमि में १९६० से १९९० के तीस वर्ष की अवधि में २१,६८,५५५ टन के करीब फ्लोरिन व ५५३२ टन युरेनियम गहराई तक अंडा जमा कर बैठ गया है। हम जो अनाज आज खा रहे हैं उसमें २५७५ पी.पी.एम. फ्लोरिन भी खाना पड़ रहा है। हर एक किलो अनाज के साथ २४३ बिकवेरिल्स (इकाई) भी पेट में पहुंचानी पड़ रही है। श्री आर. अशोककुमार द्वारा जनवरी १९९० में तैयार मेन्युस्क्रिप्ट के अनुसार तो अपने देश की सिंचाई के अन्तर्गत भूमि के गर्भजल में नाइट्रेड का प्रमाण ३२० पी.पी.एम. हो गया है। वस्तुतः अधिकतम सुरक्षा मर्यादा मात्र ४५ पी.पी.एम. ही है।

नाइट्रोजनयुक्त नृत्रिम खाद के दुष्प्रभाव ने अपनी भूमि, खाद्यान्नों और पीने के पानी तक की प्राथमिक आवश्यकताओं को भी भयजनक रूप से प्रदूषित कर दिया है। मुखर्जी पी. नेजा और सुशील ए. के जैसे लोगों के अभ्यास के निष्कर्ष बताते हैं कि बड़े बांधों के विस्तार-क्षेत्र में भूगर्भ जल में फ्लोरिन की मात्रा भयजनक रूप से बढ़ गई है।

महाराष्ट्र जिले के प्रभावित क्षेत्र के दो गांवों में किये गये शोध के आंकड़े पेय जल में फ्लोरिन की मात्रा ३.२ पी.पी.एम. से ३.८ पी.पी.एम. बताते हैं। नागार्जुन सागर क्षेत्र में ये मात्रा ३ से १३ पी.पी.एम. व तुंगभद्रा बांध परिसर में ५.४ से १२.८ पी.पी.एम. तक है।

फर्टिलाइजर्स का उपयोग यदि इसी गति से बढ़ता रहा तो सन् २००० तक भूगर्भ जल में फ्लोरिन की मात्रा ११.८५ से ५० पी.पी.एम. तक व सन् २०५० तक ८३ से ३५० पी.पी.एम. तक हो जायेगी। आंकड़ों के इन्द्रजाल में जिन्हे रस व ज्ञान न हो तो उनकी जानकारी के लिये प्रस्तुत है कि उचित मात्रा से अधिक प्रमाण में दूषित फ्लोरिन वाला जल पीने से जोड़ों में जकड़न पड़ जाती है व तकलीफ इतनी बढ़ जाती है कि ऐसे प्रदूषित जल वाले गांव के लोग रात्रि को सोते समय बिस्तर के ऊपर छत में मोटा रस्सा लटका कर रखते हैं ताकि सहारा लेकर प्रातः उठ सकें। वैल ऐसा पानी पीये तो उन्हें खड़ा करने में सहायता करनी पड़ती है। वैल जैसे शक्तिशाली जीव की ऐसी अवस्था के सामने मनुष्य की तो विसात ही क्या है ?

व्यापार-उद्योग से संबंधित पत्र-पत्रिकाओं के संपादक नये-२ फर्टिलाइजर प्रकृतियों के समाचार सउत्साह प्रस्तुत करते हैं। उस समय कथित कृषक नेता फर्टिलाइजर की कीमतों में सबसेसीडी प्राप्त करने हेतु अपने तर्कस्व का उपयोग करते हैं। क्या वे सोचने के लिये कुछ देर रुक सकेंगे, कि ये प्रजा के हित-मित्र है अथवा हित-शत्रु ?

महाभारत की सिरियल को देखकर ज्ञान बोध की इस अद्भुत विरासत को मनोरंजन का साधन मात्र मान लेने वाली इस पीढ़ी को तो ख्याल भी नहीं आयेगा कि महाभारत का 'शांतिपर्व' आदर्श राज्य संचालन की सचोट निरूपणा करता है। आधुनिक विज्ञान के अंधधुंधालुओं को उसमें वहम और पुराण के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता। पर वास्तव में यह महाकाव्य तो कितनी ही प्रतीकात्मक कथाओं द्वारा सुंदर सन्देश दे जाता है। ऐसी ही एक लघुकथा में गाय के अंग-प्रत्यंगों में देवताओं के आवास की चर्चा है। देर से आई हुई लक्ष्मी भी किसी एक अंग में आवास की आज्ञा मांगती है। गाय कहती है कि मेरे हर अंग में रहने का अधिकार किसी न किसी देवता ने प्राप्त कर लिया है, कहीं भी स्थान रिक्ति नहीं है + यदि रहना है तो मेरे मल-मूत्र में रह सकती हो। (शकृन्मूत्रे निवसेत) लक्ष्मी ने कथन को स्वीकार-कर लिया व उस समय से वह गोबर-मूत्र में निवास करती है। बड़े-बड़े निरर्थक विषयों पर सहस्रों टन कागज होमने के पश्चात् व रिसर्च के नाम पर प्रजा के गाढ़े पसीने की कमाई के अरबों रूपये व्यय करने के बाद भी कथित अर्थशास्त्री जो बात नहीं समझ पाये, उस महासत्य को महाभारत के कथाकार ने कथा के उपनय द्वारा किस तरह सहज में ही समझा दिया है।

पशुओं के गोबर-मूत्र में लक्ष्मी का वास है, यह तथ्य यदि राजनीतिज्ञ व उनके सचिव जानते होते तो पशुओं का बृहत स्तर पर कत्ल करवाकर उनके चमड़े व मांस के निर्यात द्वारा कमाई विदेशी मुद्रा से फर्टिलाइजर का आयात कर के और उसके उपयोग के लिये सबसेसीडी देने की, 'गाय दोहकर कुत्तों को दूध पिलाने की' मूर्खता नहीं करते।

फर्टिलाइजर की कीमत में सबसेसीडी, ट्रेक्टर क्रय के लिये संस्ते ब्याज पर ऋण, अनाज के पोषणक्षम भाव, सिंचाई व बिजली दर में राहत, आदि विविध मांग द्वारा जगत का तात कृषक दिन उगतें ही कटोरा लेकर सरकार से भीख मांगने लगता है। जग तात किसान को भिखमंगे के रूप में परिवर्तित करने वाले किसान नेताओं के हृदय में किसान

के प्रति यदि सच्चा हितभाव होता तो वे हरित क्रांति की भाँति का शीघ्र ही निषेध करते और आसमान छूते कृषि व्यय को धरती पर उतारने का प्रयास करते ।

बाप-दादाओं से विरासत में मिली भूमि, परम्परा से चलती आ रही बैल जोड़ी और औजार, पिछले वर्ष का सुरक्षित बीज, स्वयं व परिवार का श्रम पुरुषार्थ, घर के पशुओं से प्राप्त मुफ्त गोबर, खाद व निशुल्क बपौती से प्राप्त कुँए के जल के कारण एक जमाने में खेती की "इन पुट कॉस्ट" जीरो थी । जो कुछ उत्पन्न होता था वह पूर्ण विशुद्ध लाभ ही था । कृषि विश्वविद्यालय और कृषि विभाग द्वारा सिखाई गई 'सुधरी खेती' के पुण्य प्रताप से फर्टिलाइजर, जंतुनाशक दवायें, संकर बीज, ट्रैक्टर से लेकर डीजल इंजन तक के खर्च ने किसान की नन्ही कमर पर असह्य बोझ डाल दिया है । वर्ष में सिर्फ एक फसल लेता किसान ५० वर्ष पूर्व जितना सुखी था, उतना सुखी वर्ष में तीन तीन फसल प्राप्त करके बारहों मास बेगार ढोता आज का पंजाब-हरियाणा का किसान भी है अथवा नहीं, यह यक्ष प्रश्न है ।

बम्बई के गुजराती बुद्धिजीवियों में मधु दण्डवते के अनेक मित्र परिचित हैं । बजट सबसीडी की अर्जी पर फाइनलाइजेशन की मोहर लगाई जाये उसके पूर्व क्या उनके मित्र उन्हें सरती लोकप्रियता के राजकारण की पीड़ा से बाहर आकर गुट्टी ऊँचे मानव सिद्ध होने का अवसर झडपने के लिये समझाँ सकेंगे ? सबसीडी का शहद-मीठा जहर दिलाने वाले 'मधु' से कडवी दवा पीने के दंड देने वाले 'दंडवते' भविष्य के वित्त मंत्रियों के लिये एक उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत कर पायेंगे ।

(यह लेख जनवरी १९९१ में लिखा गया)

अनुवाद: श्री मनोहर लालजी सिंधी
सिरौही (राजस्थान)

श्री अतुल शाह (हाल में परमपूज्य मुनिराज
श्री हितरुचि विजयजी महाराज साहब)
के मूल गुजराती लेख
"इटीलापगर सबसीडी - धीभुं भीहुं गेर"
का हिन्दी अनुवाद

संपर्क :

विनियोग परिवार

बी/२ - १०४, वैभव अपार्टमेंट,
जांबली गली, बोरीवली (पश्चिम), मुंबई-९२.
टेली : ८०२०७४९ / ८०७७७८१

जिल्ला कलेक्टर के पद पर विदेशी नागरिक की नियुक्ति हो सकेगी

नई दिल्ली। केन्द्र की योजना यदि मंजूर होगी तो जिल्ला मजिस्ट्रेट, जिल्ला कलेक्टर के रूप में कोई अमेरिकन नागरिक होगा और इस बारे में आश्चर्यचकित नहीं होंगे। वैश्वीकरण के नाम से यह सबकुछ करने की तैयारी हो रही है। यह योजना मंजूर होगी तो केन्द्र के नौकरशाही में विदेशी नागरिकों को 'चोर दरवाजे से' प्रवेश दिया जाएगा। कल अमेरिकी नागरिक भारत संरक्षण सचिव बन जाए या वित्त सचिव पद पर विश्व बैंक का कोई अधिकारी हो तो आश्चर्य नहीं। नौकरशाही जिम्मेदार बनाने के लिए केन्द्र ने पब्लिक सर्विस बिल का मसौदा तैयार किया है, उसमें नौकरशाही में विदेशी नागरिकों की नियुक्ति का सरकार को विशेषाधिकार होगा। इस विधेयक के बारे में जनता की प्रतिक्रिया मांगी गई है।

जिम्मेदारी के बारे में पर्याप्त उपाय नहीं

मसौदा पढ़ा जाए तो प्रशासन सुधार के बारे में और एक रिपोर्ट जैसा लगता है। नौकरशाही को कैसे जिम्मेदार बनाया जाए इस बारे में उसमें पर्याप्त उपाय नहीं है उसके चैप्टर १० के क्लॉज ३ में एक चिन्ताजनक बात है कि विशिष्ट परिस्थितियों में सरकार की लिखित मंजूरी में विदेशी नागरिकों

को सरकारी सेवाओं में नियुक्त किया जा सकेगा।

यह कहने भी आवश्यकता नहीं कि शालाओं में प्रवेश से शुरू करके पेट्रोलपंप के वितरण में सरकार ऐसे विशेषाधिकारों का कैसे सदुपयोग करती है। प्रधानमंत्री के आधीन कार्मिक मंत्रालय ने विधेयक ड्राफ्ट किया है। लेकिन इस विभाग के सहायक सचिव जे. सी. पांडेय ने यह कह कर बचाव किया था कि इनका मसौदा प्रशासनिक विभाग ने तैयार किया है।

सुचार की दिशा में यह नया आइडिया

प्रशासन सुधार विभाग के अधिकारी नरसिंहन का कहना है कि विधेयक कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में एक कोर ग्रुप ने ड्राफ्ट किया है। विदेशी नागरिकों को सरकारी पद पर नियुक्त करने संबंधी प्रावधान के बारे में उनकी ऐसी दलील है कि प्रशासनिक सुधार की दिशा में यह नई युक्ति है। इसके बारे में जनता के सुझाव की प्रतीक्षा की जा रही है। यह तो सिर्फ मसौदा है। कानून नहीं बना। तो इसमें गलत क्या है? ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में कबिल विदेशी अधिकारियों की सरकारी सेवाओं में नियुक्त करने में आखिरकार क्या आपत्ति है?

(आधार : सांज समाचार, ११-२-२००७)

समीक्षा

उपरोक्त समाचार के अनुसार यदि जिल्ला कलेक्टर के पद पर विदेशी नागरिक नियुक्त किए जा सकेंगे, तो फिलहाल जो लाल बत्तियों की गाड़ी में फिर रहे हैं, सरकारी आलीशान निवास स्थान की सुविधा ले रहे हैं 'साहब' का बिरुद प्राप्त कर जनता को धमका रहे हैं, इन देशी नौकरशाहों का क्या होगा? उनकी सरकारी नौकरी और पद चालू रहेगा? या उन्हें घर बैठने की नौबत आएगी?

सिर्फ कलेक्टर जैसे ऊंचे पद पर ही विदेशी नियुक्त किए जाएंगे? या मुख्यमंत्री के पद पर भी श्वेत प्रमुख विराजमान होंगे? विराज सकेंगे? पिछले कुछ वर्षों से देश में लागू चुनाव पद्धति तथा दोहरी

नागरिकता पद्धति का लाभ उठाकर विदेशी भी भारत के संविधान सभा आदि में चुने जा सकते हैं या नहीं? चुने जा सके तो राज्य के मुख्यमंत्री आदि बन सकेंगे या नहीं? क्या पुनः यूरोपियन साम्राज्य की देश में स्थापना होगी? इतिहास का पुनरावर्तन होगा? देशी विधायक - मंत्री आदि अस्थाई आधार पर नियुक्त हुए थे उनका उपयोग कर उनके द्वारा जनता के जीवन के तमाम अंगों पर स्वराज्य के नाम पर जो ठोस लोहे का चौकट फिर करना था वह फिट हो गया होगा? इसलिए अब उन्हें निवृत्त करना होगा? भविष्य के गर्भ में क्या छिपा होगा? कोई भविष्य वेत्ता कह सकेगा?

बढ़ती पशु-हत्या के साथ
बढ़ रहा है आंतरिक व विदेशी कर्ज
और आ रही है शाश्वत आर्थिक गुलामी



हिंसा और शोषण की नींव पर आधारित
पश्चिमी कृषि विज्ञान दूर करो
पशुपालन विज्ञान दूर करो !



खेती कोई धंधा, व्यवसाय या उद्योग नहीं !
वह तो है विश्व-कल्याण का मूलभूत 'यज्ञ' !
उसकी पवित्रता को मत नष्ट करो !

चेतावनी

पशुओ और मानवों कोआधे भूखे रखने
की योजनायें कहाँ बनती है ?

कृषि भवन बनाम कसाई भवनमें !!



पंचवर्षीय योजनाओं के केन्द्र से

- दैत्याकार मशीन हटाओ
- पशु आधारित खेती, उद्योग व व्यवसायें प्रस्थापित करो
और फिर देखो चमत्कार !!!



रासायनिक खाद वरसाती है -

- जहर
- सबसीडी का भ्रष्टाचार
- महँगाई
- असह्य कर्ज का बोझ
- आत्म-हत्याएँ
- अकाल



कृषि भवन थोप रहा है पश्चिमी खेती विज्ञान
भारतीय किसान मांगे भारतीय कृषि विज्ञान !